सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

भाग २] मथुरा, २० जून सन् १९४१ [अंक ६

बबूला

(श्री जिज्ञासु)

जल में वायु फँसी कारण वश, उसका पर्दा फूला।
चम चम करता चलता फिरता, निकला एक बबूला॥
वह अपार जल राशि मुद्दतों से बहती आती थी।
क्षण में ऐसे कोटि बुदबुदे रचती बिखराती थी॥
पर वह नया बबूला जिस दिन उपजा हँसता आया।
आँखें खुलते खुलते उनमें एक नशा सा छाया॥
पैर पंगु थे, हाथ नहीं थे, चढ़ा दूसरों पर था।
इस पर भी वह उछल रहा था, नहीं किसी का डर था॥
किरणें चमकीं तो उसने अपने को सूरज जाना।
हवा चली तो उसकी गति को अपनी शक्ति बखाना॥
हस्ती क्या थी ? मगर ऐंठ में अकड़ा ही जाता था।
अपने को समर्थ, शासक, भूपति, यति बतलाता था॥
हँसी हवा भीतर की जो, देखी उसकी नादानी।
नष्ट होगया हवा उड़ गई, पानी में था पानी॥

× × × ×

मैंने बहुत तलाश किया, पर मिला न कहीं बबूला।
मैं रो पड़ा—व्यर्थ कुछ क्षण के लिये अभागा फूला॥

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौतका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

मथुरा, २० जून सन् १९४१

धर्म का तिरस्कार मत करो

नवीन सभ्यता की पुकार है कि "धर्म अफीम की गोली है। इसका परिणाम यह होता है कि लोग कल्पना जगत में विचरण करने लगते हैं और स्वर्ग, मुक्ति या ऐसे ही किसी अन्य ख्याली पुलाव के मजे चखते रहते हैं। कठोर कर्तव्य से बचने के लिए लोग वैराग्य का आसरा पकड़ते हैं और अकर्मण्यता के फल स्वरूप जो कष्ट मिलने चाहिए, उनको आसानी से सहने के लिए धर्म की गोली का नशा कर लेते हैं। जिन्हें अवसर मिलता है वे धर्म के नाम पर बुरे-बुरे कर्म करने में नहीं चूकते। जिन्हें अवसर नहीं मिलता, वे मन को समझाने के लिए धर्म का आवरण ओढ़ते हैं। इस प्रकार धर्म वास्तव में आलसी और बदमाशों का ही पेशा रह जाता है।"

इस कडुए सत्य को सुनने में हमारे कान दुखते हैं। धर्म की निन्दा करना नास्तिकता है। पर जब नास्तिकता में सचाई प्रतीत हो तो उसकी ओर से आँखें बन्द नहीं की जा सकतीं। आज हमें धर्म के दो ही स्वरूप देखने में मिलते हैं, आलस्य या बद-माशी। हजारों लाखों भिखमंगे पीले कपड़ों को लज्जित करते हुए कुत्तों की तरह रोटी के टुकड़े माँगते फिरते हैं। जिस प्रकार अपाहिज या अशक्त प्राणी अपनी प्राण रक्षा के लिए समर्थों से दया की याचना करते हैं, वैसे ही यह लोग अपने पेट को दिखाते हुए दांत रिरिया कर भक्ष अभक्ष की याचना करते हुए दिन भर दौड़ते रहते हैं। दूसरे वे लोग हैं जिनके हाथ में कुछ सत्ता आगई है। किसी समाज में उन्हें आदर प्राप्त हो गया है, धर्म गुरु, पण्डे, पुरोहित, पुजारी, महन्त या सन्त का स्थान प्राप्त हो गया है। उनके कार्य उन भिखमङ्गों से अधिक भयङ्कर होते हैं। चेले चेलियों का धन हरण करने के साथ उनकी बुद्धि का भी यह हनन करते हैं। अपनी ही तरह आलस्य, प्रमाद या ख्याली दुनियां में उलझा कर उन्हें निकम्मा बना देते हैं। साथ ही धर्म की पवित्र वेदियों की आड़ में मुद्रा मैथुन की नग्न उपासना होती रहती है।

लोग धर्म की प्रशंसा तो करते हैं पर उससे बिच्छू की तरह बचते हैं। साधारण श्रेणी का गृहस्थ यह कदापि पसन्द नहीं करेगा कि उसके लड़के लड़की किसी साधु या पुरोहित के संसर्ग में आवें। क्योंकि वह जानता है कि इसका निश्चित परिणाम होगा बरबादी! धर्म के महाप्रसाद के रूप में किसी को दो ही वस्तुऐं मिल सकती हैं, अक-र्मण्यता या दंभ। यह दोनों गुण एक समाज जीवी व्यक्ति पसन्द नहीं कर सकता, क्योंकि इनके सहारे वह किसी प्रकार सन्तोषजनक उन्नति नहीं कर सकता और न औसत दर्जे का जीवन ही बिता सकता है।

तब क्या धर्म सचमुच ही 'अफीम की गोली है?' विचार पूर्वक अन्वेषण से पता चलता है कि वह वस्तु धर्म नहीं हो सकती, जिसकी बेल पर ऐसे विषैले फल आते हों। धर्म का उद्देश्य मनुष्य को सर्वतोमुखी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करके अन्ततः चरमलक्ष-शास्वत सुख, परमानन्द की प्राप्ति करा देना है। धार्मिक व्यक्ति का शरीर और मन स्वस्थ रहना चाहिए, उसके मुख और वाणी में से अमृत का झरना बहना चाहिए, जिसको पान करने से तृप्त

प्राणियों को शीतलता का भान हो। धार्मिक व्यक्ति ऐसा प्रकाश-स्तम्भ होना चाहिए, जिसकी पुण्य रश्मियों से प्रकाश का आविर्भाव हो और उस प्रकाश की प्रेरणा में प्राणि मात्र को सुख का मार्ग प्राप्त हो।

इन लक्षणों से तुलना करने पर आज का धर्म कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। इससे प्रतीत होता है कि यह वस्तु धर्म नहीं है। करोड़ों कंठों से सूर्य को "कौआ" सिद्ध किया जाय तो भी सूर्य की वास्तविकता में कुछ अन्तर न आवेगा, किन्तु धर्म की स्थिति आज ऐसी नहीं है। नवीन सभ्यता के आक्षेप चाहे अत्युक्ति पूर्ण हों, दुर्बुद्धि के कारण कहे गये हों तो भी उन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इन आक्षेपों की जीती जागती और चलती फिरती प्रतिमाएं हम लाखों की तादाद में आँखों के सामने घूमती फिरती देखते हैं। इनमें धर्म या आध्यात्मिकता का एक भी गुण दिखाई नहीं पड़ता, इन धर्मध्वजियों की अपेक्षा एक सैनिक आत्मा की अमरता के बारे में अधिक जानता है। वह गीता को नहीं रटता, पर गरजती हुई तोपों के बीच निर्भय होकर घूमता है। वह बैराग्य की आड़ में व्यभिचार के अड्डे कायम नहीं करता, वरन् अपने प्रिय-परिवार, प्राण प्रिया स्त्री और प्यारे बालकों का मोह छोड़ कर समरांगण में मृत्यु के साथ अठखेलियाँ करने के लिये हँसता हुआ जाता है, देश की पुकार पर एक गृहस्थ कर्मवीर अपना सर्वस्व निछावर कर देता है, किन्तु एक धर्म जीवी अपने पर तनिक भी आँच न आने देने के लिए दर्शन शास्त्र के पन्नों की आड़ में छिपता है। संसार के असंख्य गृही नवयुवक देश के उद्धार के लिए अपनी जान पर खेले हैं, परन्तु भारत के कितने गँजेड़ी, भिखमंगे जो धर्म के नाम पर पलते हैं—धर्म के लिये कष्ट सहने को आगे आये?

इन कसौटियों पर कसने से पता चलता है कि हम धर्म के नाम पर 'अज्ञान' की पूजा करने लगे हैं और अज्ञान को धर्म समझने लगे हैं। शिकारियों से बचने के लिए जिस प्रकार शुतर मुर्ग बालू में अपना मुँह गाढ़ देता है और कुछ क्षण के लिए अपने को सुखी पाता है, उसी प्रकार कर्तव्य की अवहेलना करने वाले बेशक धर्म को अफीम की गोली के रूप में सेवन करते हैं, परन्तु, हे आक्षेप करने वालो! यह वस्तु धर्म नहीं है, इसका नाम है अज्ञान है। गौ के स्थान पर गधा आबैठे और उसकी तुम पूर्ण सुश्रूषा करके भी जब दूध न पा सको तो गौ को गालियाँ मत दो। आँख खोल कर देखो कि उसके स्थान पर कोई और तो नहीं आ बैठा है। धर्म के सिंह की खाल ओढ़ कर आज अज्ञान का शृगाल घूम रहा है। आँख खोल कर सत्य असत्य को पहचान करो, सिंह को अकर्मण्य मत बताओ।

धर्म आत्मा का दिव्य गुण है। वह जिस पुण्य पुरुष के अन्तःकरण में प्रवेश करता है, उसे प्रकाश का पुंज बना देता है। वह भिखमंगा नहीं, वरन् दानी होता है। विश्व उसके ऋण से ही दबा होता है, भला उसका बदला चुकाने की सामर्थ्य किसमें होगी? उसके निकट जाने पर कोई बर्बाद नहीं होता वरन् अपने कार्य के योग्य उचित शक्ति प्राप्त करता है। प्राचीन समय में राजकुमारों की शिक्षा ऋषियों के आश्रमों में होती थी। इससे वे लड़के न तो अकर्मण्य बन जाते थे और न गाँजा पीना सीख आते थे। सच्चा धार्मिक, जान बचाने के लिए धर्म पुस्तकों की आड़ नहीं ढूंढता, वरन् वह दूसरों के लिए दधीच की तरह अपनी हड्डियाँ दे देता है और नारद की तरह दिन रात धर्म प्रचार की रट लगाता हुआ घूमता है। व्यास की तरह अपनी आयु सद् ग्रन्थों की रचना में लगा देता है। द्रोणाचार्य की तरह शस्त्र विद्या का प्रचार करता है। पाणिनी की तरह व्याकरण बनाता है। परशुराम की तरह दुष्टों को दण्ड देता है और बुद्ध की तरह प्रेम धर्म का उपदेश देता है। वह समय और देश की आवश्यकताओं की ओर देखता है और अपनी शक्तियों को उसी में लगा देता है।

धार्मिक पुरुष अन्याय पूर्वक धन नहीं कमावेगा, आधापेट रोटी खाकर सो रहेगा,किन्तु अधर्म के धन की इच्छा न करेगा। वह आलसी और प्रमादी भी नहीं होगा ।समय का सदुपयोग करके अपनी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दशा सुधारेगा। वैराग्य का आसरा लेकर परिवार के प्रति अपना कर्तव्य पालन से बचना नहीं चाहेगा, वरन् उन्हें ईश्वर की पूजनीय प्रतिमा समझ कर ठीक प्रकार अपने धर्म का पालन करेगा । उसे आलस्य में पड़े पड़े स्वर्ग के स्वप्न देखने पसन्द नहीं होते, वरन् अपना एक कर्तव्य पूरा करके एक मोर्चा फतह करने वाले सेनापति की तरह सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। अकर्मण्यता और धर्म एक साथ नहीं रह सकते। कर्तव्य शील ही धार्मिक है और ऐसा धार्मिक पुरुष कदापि दीन दरिद्र नहीं बन सकता।

धर्म का अर्थ है कर्तव्य ।धार्मिक पुरुष चाहे वह गृहस्थ हो चाहे सन्यासी, दूसरों की भलाई के लिए कर्तव्य धर्म समझ काम करता रहता है। ऐसे कर्तव्य धर्म को जो स्वीकार कर लेता है, उसे न तो कठिनाइयाँ प्रतीत होती हैं और न दुःख शोक सताते हैं । धर्म का निश्चित परिणाम सुख है— धार्मिक व्यक्ति के हृदय में अभाव की दावानल नहीं जलेगी, उसकी जटाओं में स निर्मल गंगाजल की धारा बहती रहेगी। धर्म सूर्य है। कोई सभ्यता उसका उपहास करके तिरस्कृत नहीं कर सकती। अज्ञान तिरस्करणीय है, धर्म नहीं। आलोचको! अज्ञान का तिरष्कार करो! धर्म का नहीं।

जैसा तुम अपने को बनाते हो वैसे ही हो। तुम स्वयं अपने स्वामी हो। यदि तुम स्वस्थ हो, शक्तिवान हो तथा साधारण कोटि की बुद्धि रखते हो तो तुम अपनी इच्छानुसार मानसिक, शारीरिक उन्नति कर सकते हो ।

ईश्वर का अस्तित्व

(महात्मा गांधी)

उस वर्ष अपनी मैसूर की मुसाफिरी में मैं कितने ही गरीब आदमियों से मिला था। पूछने पर मालूम हुआ कि वे यह नहीं जानते कि उनका राजा कौन है । उन्होंने सिर्फ यही कहा कि कोई देवता राज करता होगा। जब कि इन गरीब देहातियों का ज्ञान अपने शासक के विषय में इतना कम है, तब मैं इस पर क्यों आश्चर्य करूं कि मै राजाओं के राजा परमात्मा के अस्तित्व को नहीं जानता, जो मुझसे महाराजा मैसूर अपनी प्रजा से जितने बड़े हैं उसके अनन्त गुणा अधिक बड़ा है। मगर तौ भी जैसे कि मैसूर के गरीब देहातियों को अनुभव होता था, मुझे भी ऐसा अवश्य लगता है कि विश्व में नियमितता है, व्यवस्था है, सभी प्राणियों, सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनका कि इस संसार में अस्तित्व है, कोई अपरिवर्त्तनीय, अटल नियम लागू होता है। यह कोई अन्धा निष्प्राण नियम नहीं है, क्योंकि कोई निष्प्राण नियम सजीव प्राणियों पर शासन नहीं कर सकता। सर जगदीशचन्द्र वसु की खोजों की बदौलत तो अब सभी पदार्थों को सजीव कहा जा सकता है, इसलिये जो नियम सभी प्राणियों, सभी जीवों पर शासन करता है, यह परमात्मा है।

मैं धुँधले तौर पर यह अनुभव जरूर करता हूँ कि जब कि मेरे चारों ओर सभी कुछ बदल रहा है, मर भी रहा है, इन सब परिवर्त्तनों के नीचे एक जीवित शक्ति है, जो कभी भी नहीं बदलती, जो सबको एक में बाँध कर रखती है । जो नयी सृष्टि पैदा करती है ।यही शक्ति ईश्वर है, परमात्मा है। मैं इन्द्रियों से जिसका अनुभव कर पाता हूँ उनमें से और कोई वस्तु टिकी नहीं रह सकती, नहीं रहेगी। इसलिये 'तत्सत्' एक वही है।

उपनिषद् चर्चा—

सौ वर्ष तक जिओ

ले०—धर्माचार्य श्री सच्चिदानन्दजी शास्त्री, बदायूं

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतं समाः,
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। ईशो०।

इस मन्त्र में उपनिषद्कार ने यह बतलाया कि कर्म करते हुये कम से कम सौ. वर्ष तक मनुष्य को जीने का अधिकार है। इस तरह कर्म करता हुआ पुरुष सौ वर्ष तक जीता हुआ कर्मों में लिप्त नहीं होता है।

अब सौ वर्ष तक जीने की व्यवस्था क्या है, इस विषय का प्रमाण सहित शत पथ काण्ड १४ में इस प्रकार बताया है कि—"ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भूत्वावनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।" इस तरह से इसके अन्दर ४ आश्रमों का विधान है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। चार आश्रमों के अनुसार प्रत्येक में २५, २५, साल बाँट देने से पूरा १०० साल हो जाता है। संध्या में इसी प्रकार का वर्णन आता है, उसमें वेद मन्त्र का टुकड़ा इस तरह है कि "पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतं पप्रवाम शरदः शतम् अदीनः स्याम शरदः शतम्" इत्यादि। इस टुकड़े में जो "जीवेम शरदः शतम्" वाक्य आता है, वह वाक्य भी हमको यही बताता है, कि हम सौ साल तक जियें बाकी मन्त्र का तो यह भाव है, कि सौ साल तक जीते हुए हमारी इन्द्रियां भी ठीक तरह से कार्य करती रहें।

अब प्रश्न यह है कि क्या सौ साल से अधिक जीने का अधिकार नहीं है? नहीं ऐसी बात नहीं है। वेद मन्त्र का टुकड़ा तो इस बारे में स्पष्ट ही कहता है, कि "भूयश्च शरदः शतात्" सौ साल से भी अधिक जिओ, परन्तु यह बात विशेष लोगों के लिये ही कही जा सकती है, सर्व सामान्य के लिये नहीं।

अब हमारे सामने प्रश्न उठता है, कि सौ साल अथवा सौ साल से अधिक किस तरह से जिआ जा सकता है! पहले पहल जो आश्रमों का विधान [ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासादि] बताया है उसमें शुरू ब्रह्मचर्य से हुआ है। हम इस बात को सहसा कह सकते हैं, कि केवल यदि ठीक प्रकार से ब्रह्मचर्य आश्रम का ही पालन किया जाय और आश्रमों का पालन न भी किया जाय तो केवल इसी ब्रह्मचर्य के आधार पर ही सौ वर्ष क्या सौ वर्ष से अधिक भी जिआ जा सकता है! क्या हमारे ऋषि मुनिओं की उमरें १०० ही वर्ष तक परिमित थीं? नहीं। उनके जीवन ब्रह्मचर्य के द्वारा बहुत लम्बे हुआ करते थे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि परमात्मा की तरफ गति करना। यह अर्थ इस प्रकार से निकला कि ब्रह्म का अर्थ परमात्मा और चर गति भक्षणयोः धातु से चर का अर्थ गति निकला है। असल में देखा जाय तो ऋषि मुनि लोग ही परमात्मा की तरफ गति किया करते थे। यह निश्चय बात है, कि जो पुरुष परमात्मा की ओर अपना ध्यान लगायेंगे वे पुरुष कभी भी संसारिक विषयों की ओर नहीं झुकेंगे। संसारी विषयों की ओर वे ही झुकते हैं, जो ईश्वर को भूल जाते हैं परमात्मा की ओर गति करना ही केवल एक ऐसा साधन है, जो कि सब से मुख्य साधन है, और इस साधन में ही सब साधन आ जाते हैं। इस साधन को अन्य साधनों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर इस तरह क्रिया होती है, कि जब मनुष्य परमात्मा की ओर गति करेगा तब परमात्मा उसको अपना भक्त जान कर उसके लिये शुद्ध कार्य की प्रेरणा करेंगे। जिस प्रेरणा को सुन कर वह भक्त उसी के अनुसार कार्य करेगा क्योंकि वह सत्य स्वरूप की प्रेरणा है। इस तरह से अपने जीवन को भक्त सौ साल से भी अधिक खैंच सकता है और इसी भक्ति के द्वारा वह शक्ति भी प्राप्त हो सकती है, कि जिसके द्वारा

भक्त अपने जीवन को कितने वर्षों बाद छोड़ूँ या रक्खूं यह प्रश्न अपने हाथ में रख सकता है! बुद्ध के जीवन चरित्र में आया है, कि उसको ऐसी शक्ति प्राप्त थी। अस्तु।

दूसरा ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्य की रक्षा करना है। वीर्य ही इस शरीर का राजा है। यदि वह इस शरीर में से निकल जाय तो शरीर उस समय के लिये मुर्दा मालूम होता है। यदि हम किसी प्रकार से अपने वीर्य की रक्षा करलें तो निःसन्देह हमे चारों आश्रमों को पार कर सकते हैं, और १०० सौ साल की आयु बिता सकते हैं। कारण यह है कि वीर्य हमारे शरीर की नींव है। जिस प्रकार मकान की नींव यदि कमजोर बनाई जाय तो सम्पूर्ण मकान जल्दी से टूट जाने का अन्देशा बना रहता है, उसी प्रकार शरीर मकान के रहने के स्थान चार आश्रम हैं। यदि वीर्य रूपी नींव ब्रह्मचर्याश्रम से ही कमजोर है, तो मकान ही गिर जायगा।

अगला उपाय १०० साल तक जीने का यह है, कि हम अपनी इन्द्रियों को संयम में रक्खें। आज कल प्रायः जो बीमारियाँ फैलती हैं, यह सब खाने पीने के ही द्वारा होती हैं, बहुत कम बीमारियाँ ऐसी हैं; जो कि किन्हीं अन्य कारणों से होती हैं। इन बीमारियों से छुटकारा पाने का सीधा उपाय यही है कि हम अपनी जिह्वा इन्द्रिय पर पूरी तौर से संयम करलें। यह कहा जाता है कि जिसने अपनी जिह्वा इन्द्रिय पर पूरी तौर से संयम कर लिया है, उसने अपने सम्पूर्ण शरीर पर संयम पा लिया है। यह बिलकुल सत्य है। बात यह है, जब हम उत्तेजक पदार्थ खाते हैं, उससे काम वासना उत्पन्न होती है, काम से मोह की उत्पत्ति होती है। मोह से आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है। जब आकर्षण शक्ति उत्पन्न हुई तो वह संघर्षण शक्ति को अपनी ओर खींचती है। संघर्षण शक्ति गरमाहट को उत्पन्न करती है। उस गरमाहट में एक प्रकार की गुदगुदी होती है। वही गुदगुदी ब्रह्मचर्य के नाश का कारण है। ज्यादा खा लेने से आलस्य, कब्ज, बुखार, भूख का कम होना वगैरह बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तो हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि जिह्वा पर संयम कर लेने से सब इन्द्रियों पर संयम हो जायगा।

अब यह प्रश्न है कि जिह्वा पर किस तरह से संयम किया जाय। एक तरीका जो मध्यम मार्गी मानते हैं, वह यह है, कि सब चीजों का स्वाद मध्यम तौर पर लिया जाय न बहुत अधिक और न बहुत कम।

दूसरा तरीका जिह्वा पर संयम करने का वस्तुओं का बिलकुल त्याग कर देना है। संसार के अन्दर दो वस्तुऐं हैं, जिन पर संसार के सब स्वाद अवलम्बित हैं, उनका नाम नमक और मीठा है। यदि नमक और मीठे का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया जाय और केवल फल और कच्ची शाक सब्जी और निस्वाद चीजों पर रहा जाय तो हम रोगों से बच जायंगे और पूर्ण १०० वर्ष की आयु का भोग करेंगे। जिह्वा संयम का अभ्यास बहुत कठिन है, परन्तु ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रख कर यदि इसको शुरू करें तो कोई कारण ऐसा नहीं है, कि हम इसमें सफल न हों। इस तरह से जिह्वा संयम पर अभ्यास कर लेने से हम अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को संयम पर रख सकते हैं। कानों से कभी बुरे वचन न सुनें तो कान संयम में हो जावेंगे, आँखों से कभी बुरी चीज को न देखें तो आँखें संयम में होजायेंगी नाक से कोई बुरी सुगन्ध न सूघें तो नाक संयममें हो जायँगी यदि अच्छी २ पुस्तकों का स्वाध्याय करें और महात्माओं का सत्सङ्ग करें तो मन संयम में हो जायगा।

यदि वाणी से सत्य बोलें किसी को धोखा न दें तो वाणी संयम में हो जायेगी। इसी तरह हम प्रत्येक इन्द्रिय को जो कि उसका ध्येय है, उसमें लगादें तो वे संयम में हो जायेंगी और १०० साल तक सब इन्द्रियाँ ठीक के तरीके से कार्य करती चली जायेंगी। यदि अधिक साधना की जायगी तो १०० से अधिक साल तक की इन्द्रियों का ठीक उसी दिशा में लगातार कार्य करते हुए चलाजाना सम्भव है।

प्रेम—मार्ग

(श्री यदुनंदन प्रसाद अग्रवाल, पौडी)

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर "प्रेम" का, पढै सो पण्डित होय ॥

—कबीर।

अग्नि की चिनगारी के ऊपर राख की पतली परत के रहते हुए उसके अस्तित्व का बोध हमें नहीं होता, परन्तु ज्यों ही परत हटा ली जाती है, चिनगारी देदीप्यमान होकर हमारे आँखों के सामने नाचने लगती है। ठीक इसी तरह हम जब प्रेम की असलियत तक पहुँचना चाहते हैं, तो हमें पहिले गहरे अनुभव द्वारा प्रेम के ऊपर पड़ी हुई उस परत को हटा लेना पड़ता है, और जहाँ एक बार उसे हटाने में सफल हुए नहीं कि हमें अपनी आत्मा प्रेम की प्रतिभा से ओत-प्रोत सी जान पड़ने लगती है। हमें प्रेम-मार्ग पर बढ़ते हुये अलौकिक सुख का अनुभव होने लगता है, और आखिर हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं, जहां से अपने प्रेमी और अपने को दो भिन्न २ वस्तुओं के रूप से देखना नहीं चाहते। दो को एक करने या अपने प्रियतम से मिल जाने के लिये पागल से हो उठते हैं। बस फिर सांसारिक कार्यों से तुच्छता का अनुभव होने लगता है, हमारा हृदय सब कार्यों से विरक्त हो कर केवल अपने प्रेमी से मिल जाने के लिये व्यग्र हो जाता है। ऐसी स्थिति को—प्रेम की पराकाष्ठा कहते हैं। प्रेम की पराकाष्ठा को पहुँचने पर सांसारिक कृत्यों से रिक्त होने की कामना प्रबल हो उठती है। उसके लिये जीवन, सिर्फ प्रेम-भजन के लिये हो जाता है। प्रेम की ऐसी स्थिति प्रायः भगवान के प्रति होती है। बड़े २ सन्तजनों ने इसी तरह अपने अखण्ड प्रेम को भगवान के प्रति लगाया और अन्त में उसी प्रेमी भगवान से मिलकर एक हो गये।

जीवन का प्रेम से गूढ़ सम्बन्ध है। जहाँ ह[म] अपने दैनिक-जीवन से प्रेम का आश्रय लेते हैं अपने नित्यकर्मों में प्रेम को ही प्रधानता देते हैं वहाँ सुख और शान्ति हमारे चरणों में आकर लोटती है। प्रेम के बिना सुख की प्राप्ति असम्भव है। अगर झोंपड़े से प्रेम है, तो उसी से सुख है और अगर उन विशाल गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से घृणा है तो वहाँ लाख सर पटकने पर भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

प्रेम वशीकरण है, उसमें वशीभूत करने की शक्ति है। हम अगर किसी के प्रति अपना सच्चा निःस्वार्थ और अटूट प्रेम करते हैं उसके लिये अपने हृदय-पट खोल देते हैं, उसको अपनी आँखों में बिठा देते हैं, तो कोई संशय नहीं कि वह अपना होजाता है, कितनी ही दूर क्यों न रहता हो मीरा के गिरधर गुपाल की तरह हर घड़ी हाजिर रहता है।

भगवान के प्रति पूर्ण प्रेम, संसार की और वृत्तियों को दबा लेता है। जिस तरह नेत्रों में अंजन लगाने से हमारे आँसू गिर पड़ते हैं, उसी तरह प्रेम रूपी अंजन हमारे आँखों के सामने नाँच रहे तमाम मोह-जाल और इच्छाओं को गिरा देता है अगर हम सच्चे हृदय से अपने पीतम को पाने के लिये प्रेम करें तो अवश्य ही उन्हें पा सकते हैं।

सदा प्रसन्न रहो। चित्त को मृदुल, कोमल और हर्षमय बनाओ। व्यर्थ का शक करने की आदत का परित्याग करदो।

× × × ×

पृथ्वी भर पर विचरण करो, जो कुछ भी सीखने लायक हो सीखो और किसी के आधीन मत हो।

× × × ×

विचार माला प्रत्येक कार्य की जननी है, एका[ग्र] चित्त की एकाग्रता या चित्त संयम उसका स्वा[मी] है, इसलिये प्रत्येक प्राणी अपने विचार और कर्म को सदैव ध्यान से देखे।

मामेकं शरणं ब्रज

(ले० ठाकुर बलवीर शाही रेणु टिहरी)

माया की उस घनीभूत तमसाछन्न रजनी में जीव की एक छोटी-सी झिंझरी जीवन-नौका डग मग करती हुई बही जा रही है। इधर उधर अथाह पारावार-रहित भवार्णव की उत्ताल तरंगें प्रबल वेग से गरजती हुई नौका को अपने अनन्त उदर में ग्रस लेने को समुद्यत हैं। प्रबल एवं भीषण वायु "सॉय-सॉय" करता हुआ, इति की सूचना देता हुआ, नौका को कभी इधर, कभी उधर, कभी ऊपर और कभी नीचे, धकेल रहा है। नौका रोही की क्या दशा ऐसे आपात्संकुल समय होगी ?—इसका अनुमान सहजगम्य है। ठीक ऐसे करुण समय में कहीं सुदूर प्रदेश से प्राण, मन, और आत्मा में एक हल्की किन्तु दिव्य गुदगुदी पैदा करदेने वाली मधुर एवं पावन मुरली-ध्वनि सुनाई देती है। क्या ?—

दैवी ह्येषा, गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

ओह ! कितना मधुर, कितना सुन्दर, और कैसा सुदृढ़ आश्वासन है इस ध्वनि के दिव्य संदेश में !! नौका रोही चौंक उठता है, बाग़ बाग़ हो उठता है। उसका अन्तस्तल आशा के एक प्रफुल्ल आलोक से आलोकित हो उठता है। वह अपने को सम्हालता है और पतवार को दृढ़ता से पकड़े हुए तेजी से नौका को चलाने लगता है। वह कुछ निर्भीक-सा हो उठा है। मृत्यु का अनोखा उपहास उसके अधर-पल्लवों में हल्की-सी मुस्कान बनकर थिरक रही है। हां, वह उस पर देखता है, क्या उस घनघोर घटा टोप-मई, नीरव, शून्य रजनी के बीच एक प्रखर, प्रशान्त स्निग्ध एवं दिव्य आलोक-राशिके मध्य एक मनोहर मंजुल पुण्य-श्री-सम्पन्ना अलौकिक रूप राशि! उस दिव्य मूर्त्ति-विग्रह के एक २ परमाणु से परमानन्द, प्रेम, और पवित्रता फूट २ कर बाहर निकल रहे हैं। उसके एक हाथ में वही मुरली और दूसरा हाथ अभय-मुद्रा विशिष्ट! त्रैलोक्य-सौन्दर्य्य-श्री की आपात मूर्त्ति उस जीवन—यात्री के सन्मुख उपस्थित हुई मंद-मंद मुसका रही है।

यात्री विस्मय और आनन्द के द्वन्द्व से आप्या-यित और पुलकित हुआ आत्म-विस्मृत-सा होगया। क्षणभर बाद उसे संज्ञा प्राप्त होती है। वह सुनता है उस मन भावनी मूर्त्ति के कोमल कोकिल-कंठ से यह त्रिताप हारी प्रतिवाक्—

सर्व्व धर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

उसकी दशा ही बदल जाती है। उसके रोम २ से परमानन्द की अजस्र धारा बह निकलती है। वह देखता है—प्रकृति का एक २ ज़र्रा परिवर्त्तित होगया है। जल, थल, नभ, अनल, और अनिल, ये सब एकदम परिवर्त्तित! भीतर आलोक, बाहर आलोक, ऊपर आलोक, नीचे आलोक, इधर आलोक, उधर आलोक, सृष्टि का कण २ आलोक मय! अब वह तमस कहां? हां, अब वह घनघोर घटाटोपमयी नीरव रजनी किधर गई? जागृति के समुदाय में स्वप्निल द्वन्द्वों का अस्तित्व कहाँ? भीषण भवार्णव, भवार्णव न रहकर परमानन्दामृतार्णव के रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। और नौका रोही ?—अरे, वह देखो, वह अपने को नहीं सँभाल सक रहा है। उसके दुर्बल हाथों से पतवार छूट गई! ओह! नौका अमृताम्बुनिधि के अनिरुद्ध आवर्त में चली गई। यह लो, नौका चक्कर खारही है। और नौका रोही? अहा वह तो अब बेसुध होकर नौका पर गिरगया! नौका और वह,—हाँ दोनों उस अथाह पारावार रहित अमृत-जल-राशि में सदा के लिए निमग्न हो गये !!—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।' वह जहां से आया था वहीं पहुँच गया। जो था,वही हुआ।—रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा ऽऽनन्दी भवति।'

देखो, परमानन्द के पथिक! वो देखो और सुनो-वे मुरली धर अमर सन्देश दे रहेहैं,-'मामेकं शरणंव्रज'

योगियों की कहानी

एक अंग्रेज की जबानी

(लेखक—मि० जी० के० मर्फी)

सन् १६२८ ई० में जब मैं युक्त प्रान्त में था, मुझे गङ्गाजी के उद्गम-स्थान हरिद्वार जाने का अवसर मिला। उस समय प्रति दस वर्ष में लगने वाला कुम्भ मेला वहां लगा हुआ था। सारा शहर भक्त-हिन्दुओं से भर गया था। मैं घाट के पास विचित्र प्रकार के दृश्यों को देख रहा था। मैंने वहां सैकड़ों साधुओं को देखा। घाट के ऊपर बने हुए मन्दिर के पास जाने पर मैंने एक वृद्ध योगी को देखा। उसकी लम्बी जटायें सिर पर पगड़ी के नीचे बंधी हुई थीं। वह भक्ति-पूर्वक माला जप रहा था। उसके चारों तरफ यात्री भीड़ लगाये हुए थे। सब एक दूसरे, को धक्का देकर निकल जाना चाहते थे, जिससे वे सूर्यास्त के पहिले स्नान करलें।

ज्यों ही बूढ़े ने मुझे देखा उसे मैंने प्रणाम किया और उसके बगल में पड़ी हुई बांस की चटाई पर कुछ पैसे फैंक दिये। उसने मुझे आशीर्वाद दिया और गौर से मेरी तरफ देखने लगा। फिर उसने कहना आरम्भ किया, 'आपने गङ्गाजी के भक्त को दान दिया है, गङ्गाजी आपका भला करेगी।'

मैंने मुस्कराकर कहा—मैं आशा करता हूँ कि वे मुझे सौभाग्य देंगी।

—कोई बात नहीं है। आप शीघ्र ही विलायत जायेंगे और वहां से कभी वापिस नहीं आयेंगे।

—आप कैसे जानते हैं? चकित होकर मैंने पूछा।

—महोदय! यह तो आप के चहरे पर लिखा हुआ है, उसने कहा। इसके बाद हम लोग बात-चीत में लग गये। मैंने पूछा कि क्या वह मन और आत्मा के द्वारा बात-चीत करने में विश्वास करता है? क्या वह इस उपाय से समाचार भेज सकता है? उत्तर मिला विश्वासी के लिये सब कुछ सम्भव है।

—'इसका अर्थ तो यही है कि आप भी ऐसा कर सकते हैं। क्या आप अपनी इस अलौकिक शक्ति का परिचय मुझे दंगे?' मैंने कहा।

'—जी हां किसी भी समय।' उसने कहा।

'अच्छा' मैंने कहा—दूसरे हफ्ते जब मैं कलकत्ते जाऊंगा तब आप मुझे अपना समाचार दीजियेगा।

'—ऐसा ही होगा।, उसने विश्वास के साथ कहा।

थोड़ी देर पहिले मैं अपने एक मित्र से वहीं मिला था जो वहां पुलिस की ड्यूटी पर आये थे। मैंने कहा कि मैं अपने एक योरोपियन मित्र को गवाह बनाकर चला जाऊंगा। एक घण्टे तलाश करने के बाद मेरे मित्र मि० स्काट मिले। मि० स्काट असिस्टेण्ट सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस थे। वे एक सख्त दिमाग के 'स्काच' थे। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं आत्मा के द्वारा बात करने के प्रयोग में उनकी सहायता चाहता हूं। तो वे मेरे ऊपर बहुत हँसे।

उन्होंने कहा—"मूर्ख मत बनो। अगर तुम मेरी राय मानो, तो तुम इन लोगों से अलग ही रहो। वे वाहियात किस्म के भिखमंगे होते हैं। उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है"

पर मैं अपने अनुरोध पर दृढ़ रहा। अन्त में बहुत कहने सुनने पर वे योगी के पास आने के लिये तैयार हो गये। पुलिस अफसर को देखकर उस योगी को आश्चर्य हुआ। मैंने उसे समझाया कि कोई घबराने की बात नहीं है। बादमें हमने यह इन्तजाम किया कि एक हफ्ते बाद एक खास दिनको दस बजे रात वह हमारे पास समाचार भेजे। उस समाचार को मि० स्काट को भी उसी समय दे दे। मैं उस समय कलकत्ते में रहूंगा, जो कि वहां से ६०० मील दूर है। स्काट से विदा होने के पहिले मैंने उसको खूब समझा दिया कि वे भेजने वाले के समाचार अवश्य लिख लें।

मैं अपने देहरादून के कैम्प से वापस आगया और पांच रोज बाद कलकत्ते चला गया। नियत

दिन को ठीक ६/४५ मिनट पर मैं "पिलिटी" होटल के अपने कमरे में अकेला बैठ कर समाचार का इन्तजार करने लगा। मुझे बिल्कुल नहीं मालूम था कि किस प्रकार का समाचार आने वाला है। यह तो बिल्कुल स्काट के ऊपर छोड़ दिया गया था।

ठीक दस बजे से कुछ पहिले, मुझे न जाने कैसा लगने लगा। इसलिये मैंने सिगार जलाया और अपने मन को शान्त करने लगा। मैं चाहता था कि जहाँ तक सम्भव हो मैं योगी को अपना प्रयोग करने की सुविधा दूं। कुछ मिनटों बाद मुझे साफ-साफ यह मालूम होने लगा कि मुझे नींद आ रही है। इसके बाद मेरे दिमाग के आगे बूढ़े योगी की तसवीर आई। उसके जटा-जूट, उसकी लाल तेज आँखें सब मैं साफ़-साफ़ देख रहा था। वह मेरी तरफ घूर कर एक टक ताक रहा था। मैंने घड़ी की तरफ देखा ६/५८ मिनट हो चुका था।

एकाएक मुझे इस तरह का अनुभव हुआ कि मुझे स्काट के पास एक पत्र लिखना ही चाहिये। उस समय मुझे यह बिलकुल नहीं मालूम था कि मैं उन्हें क्या लिखूं। फिर भी मेज पर जाकर मैंने अपना कलम लिया और यह पत्र लिखा:—

"मेरे प्यारे स्काट! मैं इन पंक्तियों में यही लिखना चाहता हूँ कि हरिद्वार वाले फकीर को पाँच रुपये दे देना। मैं यहाँ अगले हफ्ते तक रहूँगा। इसलिये पहिले निश्चय के अनुसार तुम्हारे साथ भोजन नहीं कर सकूँगा। ऐसा क्यों हुआ यह मिलने पर तुमको बताऊँगा।" पत्र को मैंने ठीक समय पर डाल दिया।

कुछ दिन बाद स्काट की यह चिट्ठी मेरे पास आई:—"तुम्हारे पत्र के लिये धन्यवाद! जो समाचार मैंने योगी को दिया था वह यही था कि तुम मेरे द्वारा योगी को पाँच रुपये दे दो। सचमुच योगी ने ठीक वही समाचार भेजा था। लौटती डाक से पाँच रुपया भेज देना और कृपा करके इन योगियों के चक्कर में कभी न पड़ना।"

माना कि कुछ फकीर धूर्त होते हैं जो अलौकिक शक्ति रखते हैं और भूत और भविष्य की बातें साफ-साफ और सही-सही बतला देते हैं। मैं ईमानदारी के साथ कह सकता हूँ कि स्वयं मेरे मामले में एक फकीर की बात बिल्कुल सत्य उतरी।

शुरू के दिनों में जब मैं बर्मा में नौकर था एक बूढे फकीर ने कहा था कि मेरे पिता जी शीघ्र ही मर जाँयगे। मैं भारत वापस आऊँगा और चौदह साल नौकरी करूँगा। मुझे बीमारी से मजबूर होकर नौकरी छोड़नी पड़ेगी और मैं पेन्शन लेकर विलायत चला जाऊँगा। मैं मुस्कराया, फकीर को दक्षिणा देकर विदा किया। उसके विषय में मैं बाद में बिल्कुल भूल गया।

एक महीने बाद मेरे पास मेरे पिता जी का देहावसान का तार आया, मैंने अर्जी दी और तीन महीने की छुट्टी पर इंगलिस्तान आया। यहाँ बहुत कठिनाई से मैंने अपना तबादला भारतवर्ष को कराया, यहाँ चौदह साल नौकरी की और स्वास्थ्य खराब होने के कारण पेन्शन लेकर विलायत चला आया। इस तरह से जो कुछ फकीर ने कहा था सब कुछ बिल्कुल ठीक हुआ।

विचारमाला प्रत्येक कार्य की जननी है एवं चित्त की एकाग्रता या चित्तसंयम उसका स्वामी है। इसलिये प्रत्येक प्राणी अपने विचार और कर्मों को सदैव ध्यान से देखे।

× × × ×

कटु संभाषण रूपी कंकण अपने हृदयकोष से निकाल फेंको, यदि तुम्हारी इच्छा संसार को अपने ऊपर मोहित करने की और जगत के लोगों को अपने वश में करने की है।

× × × ×

कार्य-ही संसार का सार है, कार्य करने से ही कीर्ति प्राप्त होती है।

बनास्पति घी से सावधान

[श्री स्वामी चिदानन्द जी सरस्वती]

कई समाचार पत्रों ने कथित बनास्पति घी की बड़ी २ तारीफ की है। एक दो पत्रों ने तो इसको जीवन-दातृ शक्तियों में से एक खास शक्ति कह कर इसका प्रचार व समर्थन किया है। इसी प्रकार एक-दो भले आदमियों ने भी इसकी पूरी २ प्रशंसा की है।

क्योंकि समाचार-पत्र इसकी तारीफ करते हैं, और एक-दो सज्जनों ने भी हम से इसके गुण वर्णन किए—इसलिए स्वयं मैंने भी अपने पाचक से कह कर कथित बनास्पति घी मंगाया, और उसका सेवन किया। यह रङ्ग, सुगन्ध और स्वाद में असली गौ के घी की तरह विशुद्ध प्रतीत हुआ। मैंने नहीं, अपितु मेरे पास आगत सैकड़ों अतिथियों ने भी इसे खाया। एक मास तक सेवन करने से इसका कोई विशेष बुरा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़े—ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। किन्तु दूसरे मास से गला, आंख और पाचन शक्ति पर कुप्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ—यहां तक हुआ कि सिर मानो चक्कर खा रहा है, ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई।

अन्त में इसको खैरबाद कहना पड़ा और अपने अनुभव से इस नतीजे पर पहुँचा कि यह किसी प्रकार भी मनुष्य के लिए खाद्य वस्तु नहीं, और इसके सेवन से घर बैठे बैठाये पैसा खर्च करके रोगों को मोल लेना है।

कथित बनास्पति घी का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने का क्या कारण है? जब इसकी तहकीकात करनी शुरू की तो इसके विशेषज्ञों से मालूम हुआ कि यह चीज मिट्टी के तैल, मछली के तेल, नारियल के तेल, तोड़िये के तेल, मूँगफली के तेल, बिनोले तथान्यान्य घटिया चीजों में सोडा कास्टिक, निकल धातु और हाईड्रोजन गैसें [इन सभी में स्वास्थ्य घातक विष है-ऐसा डाक्टर कहते हैं] डाल कर उन तेलों की गन्ध तथा रङ्ग को दूर करके शुद्ध घी जैसा रङ्ग तथा गन्ध वाली चीज बना दी जाती है। मछली आदि के तेलों को घी का रूप और गन्ध देने से उसमें शुद्ध गो-घृत के गुण उत्पन्न नहीं होते, अपितु सोडा कास्टिक आदि के स्वास्थ्य घातक गुण उस तेल में आ जाने के कारण स्वास्थ्य के लिए अति हानिकारक बन जाता है।

कथित बनास्पति घी के सेवन करने वालों ने जो हानियाँ हमें बताई हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

कथित बनास्पति घी—[१] बच्चों की बढ़ती को रोकता है। [२] बच्चों में सूखा रोग पैदा करता है। [३] पाचन शक्ति को मन्द करता है। [४] कण्ठ को खराब करता है। [५] आँख व दाँतों को खराब करता है। [६] सिर में चक्कर पैदा करता है। [७] शरीर के जीवन तत्वों का नाश करता है। [८] दूध पिलाने वाली माताओं के स्तनों का दूध सूख जाता है। [९] प्रमेह व प्रदर रोग को पैदा करता है। [१०] उसके सेवन से शरीर में सुस्ती और काहली बनी रहती है।

डा० कर्नल F. P. मैकी, इण्डियन मेडिकल सर्विस, डायरेक्टर महकमा बिटेरियालोजिकल बम्बई की बनास्पति घी के सम्बन्ध में सम्मति है, कि—"बनास्पति घी में प्राण पोषक पदार्थ पवित्र घी की भाँति नहीं होते। कई प्रकार के तैल जिनसे बनास्पति घी बनता है, ऐसे हैं कि उनमें नाम मात्र भी प्राण पोषक पदार्थ नहीं है। यह घी तो किंचित-मात्र भी बाजार में नहीं बिकना चाहिऐ। नगर के म्यूनिसिपल बोर्डों को इसकी बिक्री बिलकुल बन्द कर देनी चाहिये, नहीं तो इसका यह फल होगा कि बालक और वृद्ध-इन तैलों को खाकर अपने स्वास्थ्य को बरबाद कर लेंगे। यह मैं कदापि आज्ञा नहीं दूंगा कि यह घी काम में लाया जावे।"

इसी प्रकार—रासायनिक पंजाब सरकार का कथन है कि—"बनास्पति घी की जांच की गई उस

में वह गुण नहीं है जो घी में शक्ति बढ़ानेके सम्बन्ध में पाया जाता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन्हें बच्चों की माताओं को जो बच्चों को दूध पिलाती हों, यह बनास्पती न दिया जाय। ”

हकीम अजमल खाँ साहब के सुपुत्र और तिब्बिया कालेज के मन्त्री हकीम जमील खाँ कहते हैं कि–“ बनास्पती घी जिन २ चीजों और विधियों से तैय्यार किया जाता है, उन सब की वैज्ञानिक तहकीकात की गई, उससे पूर्णतः सिद्ध हो गया कि न यह प्राकृतिक मानवी भोजन है और न ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए किसी रूप में लाभदायक है। मैं भारतीय जनता से प्रार्थना करता हूँ कि वह अपने लाभ व हानि की बात को स्वयं समझने का यत्न करे। यदि उसे अपने स्वास्थ्य का ध्यान है, तो भोजन के विषय में पूरी छान बीन से काम ले और बनास्पती घी का प्रयोग कतई न करे।

कुछ अन्य सम्मतियाँ देखिये—“ यह घी देखने में तो शुद्ध और निर्मल प्रतीत होता है, परन्तु इस में मनुष्य के शरीर की चर्बी को घोलने वाला पदार्थ नहीं है। इस घी के खाने से लाभ के स्थान में हानि होती है। ”

—डा० कैप्टिन डी० आर० थामस I. M. S. पंजाब।

“ बनास्पती घी जो कि बनाने वालों की होशियारी से आज कल बहुत प्रचलित हो रहा है, मनुष्य मात्र के लिये हानिकारक है। निर्धन लोग जो शुद्ध घी नहीं ले सकते बनास्पती घी को खाते हैं, इससे इनको नाना प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं। दांत खराब हो जाते हैं। शरीर की गठन और बढ़ने में अन्तर पड़ जाताहै और शारीरिक शक्ति भी कम हो जाती है। “—डाक्टर फिलमर

६–“ बनास्पती घी के बनाने वालों में से कुछ की सम्मति है, कि बनास्पती घी नब्बे प्रतिशत शुद्ध घी की मिलावट में काम आता है, इस मिलावट का अन्दाजा तीन करोड़ रुपये सालाना है। यदि मिलावट बन्द होजाय तो वार्षिक तीन करोड़ का लाभ गांव वालों को पहुंचेगा। ”

—डा० एन० सी० राईट विशेषज्ञ भारत सरकार।

आस्ट्रले, सिविल सर्जन

गरीब और अपढ़ युवक का प्रयत्न

चारों ओर मोटरों, बसों, ट्रामों और अन्यान्य सवारियों का तांता लगा हुआ था। इसी भीड़ में एक बालक उधर निकल रहा था तो एक मोटर की चपेट मे आ गया। धक्का लगने से वह एक ओर गिरा और पत्थर से टकराकर उसकी एक नस टूट गई। टूटी हुई नस में से पिचकारी की तरह खून निकलने लगा।

तमाशाइयों का जमघट लग गया। सब लोग दुःख प्रकट कर रहे थे, और उसे देखने के लिये एक दूसरे को धक्का देकर आगे पहुंचने की कोशिश कर रहे थे, पर किसी से कुछ न बन पड़ रहा था। इस लड़के को क्या किया जाय, यह किसी की समझ में न आता था। निश्चय था कि कुछ मिनट और इसी प्रकार खून बहता तो लड़का मर जाता।

उसी समय भीड़ में से एक युवक आगे बढ़ा और उसने सावधानी के साथ नस के ऊपरी हिस्से को बांध दिया। इससे रक्त का प्रवाह रुक गया और लड़के की जान बचा लेने के लिए उस युवक की खूब प्रशंसा की। प्रशंसा से प्रोत्साहित होकर उस युवक ने निश्चय किया कि–‘ अब चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करूँगा, ताकि इस प्रकार के पीड़ितों की जान बचा सका करूं। ”

इस युवक का नाम आस्ट्रले था, बेचारा बहुत मामूली घर में पैदा हुआ और बहुत ही कम पढ़ा लिखा था। इस समय जवान हो चला था, पर उसका उत्साह तो देखो! किसी भी बात की परवा किये बिना कालिदास की तरह विद्याध्ययन में जुट गया और अनेक प्रकार के संकटों का सामना करते हुए डाक्टरी की उच्च कक्षा तक बराबर अपने कार्य में दत्तचित्त होकर जुटा रहा।

अन्त में यह युवक संसार का प्रसिद्ध सिविल सर्जन हुआ। आस्ट्रले की कीर्ति ध्वजा विश्व भर में उड़ रही है। हम पग पग पर आपत्तियों से डरने वालों को आस्ट्रले से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकतीहै

कहानी—

सन्यासी बड़ा या गृहस्थ

किसी नगर में एक राजा रहता था, उस नगर में जब कोई सन्यासी आता तो राजा उसे बुला कर पूछता कि—"भगवन्! गृहस्थ बड़ा है या संन्यास?" अनेक साधु अनेक प्रकार से इसको उत्तर देते थे। कई संन्यासी को बड़ा तो बताते पर यदि वे अपना कथन सिद्ध न कर पाते तो राजा उन्हें गृहस्थ बनने की आज्ञा देता। जो गृहस्थ को उत्तम बताते उन्हें भी यही आज्ञा मिलती।

इस प्रकार होते-होते एक दिन एक सन्यासी उस नगर में आ निकला और राजा ने बुला कर वही अपना पुराना प्रश्न पूछा। संन्यासी ने उत्तर दिया:- "राजन्! सच पूछें तो कोई आश्रम बड़ा नहीं है, किंतु जो अपने नियत आश्रम को कठोर कर्त्तव्य धर्म की तरह पालता है वही बड़ा है।" राजा ने कहा—तो आप अपने कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिये। सन्यासी ने राजा को यह बात स्वीकार करली और उसे साथ लेकर दूर देश की यात्रा को चल दिया।

घूमते-घूमते वे दोनों एक दूसरे बड़े राजा के नगर में पहुँचे, उस दिन वहाँ की राज-कन्या का स्वयंवर था, उत्सव की बड़ी भारी धूम थी। कौतुक देखने के लिये राजा और सन्यासी भी वहीं खड़े हो गये। जिस राज-कन्या का स्वयंवर था, वह अत्यंत स्वरूपवती थी और उसके पिता के कोई अन्य सन्तान न होने के कारण उस राजा के बाद सम्पूर्ण राज्य भी उसके दामाद को ही मिलने वाला था। राज-कन्या सौन्दर्य को चाहने वाली थी; इसलिये उसकी इच्छा थी कि मेरा पति, अतुल सौन्दर्यवान् हो, हजारों प्रतिष्ठित व्यक्ति और देश-देश के राजकुमार इस स्वयंवर में जमा हुए थे। राज-कन्या उस सभा मण्डली में अपनी सखी के साथ घूमने लगी। अनेक राज पुत्रों तथा अन्य लोगों को उसने देखा पर उसे कोई पसन्द न आया। वे राजकुमार जो बड़ी आशा से एकत्रित हुए थे, बिल्कुल हताश हो गये। अन्त में ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो अब यह स्वयंवर बिना किसी निर्णय के अधूरा ही समाप्त हो जायगा।

इसी समय एक सन्यासी वहाँ आया, सूर्य के समान उज्वल कांति उसके मुख पर दमक रही थी। उसे देखते ही राजकन्या ने उसके गले में माला डाल दी। परन्तु सन्यासी ने तत्क्षण ही वह माला गले से निकाल कर फेंक दी और कहा—"राजकन्ये! क्या तू नहीं देखती कि मैं सन्यासी हूँ? मुझे विवाह करके क्या करना है?" यह सुन कर राजकन्या के पिता ने समझा कि यह सन्यासी कदाचित् भिखारी होने के कारण, विवाह करने से डरता होगा, इसलिये उसने सन्यासी से कहा—'मेरी कन्या के साथ ही आधे राज्य के स्वामी तो आप अभी हो जायेंगे और पश्चात् सम्पूर्ण राज्य आपको ही मिलेगा। राजा के इस प्रकार कहते ही राजकन्या ने फिर वह माला उस साधु के गले में डाल दी, किन्तु सन्यासी ने फिर उसे निकाल कर फेंक दिया और बोला—"राजन्! विवाह करना मेरा धर्म नहीं है। ऐसा कह कर वह तत्काल वहाँ से चला गया, परन्तु उसे देखकर राजकन्या अत्यन्त मोहित हो गई थी, अतएव वह बोली—"विवाह करूँगी तो उसी से करूँगी, नहीं तो मर जाऊँगी।" ऐसा कह कर वह उसके पीछे लगी।

हमारे राजा साहब और सन्यासी यह सब हाल वहाँ खड़े हुए देख रहे थे। सन्यासी ने राजा से कहा—"राजा, आओ, हम दोनों भी इनके पीछे चल कर देखें कि क्या परिणाम होता है।" राजा तैयार हो गया और वे उन दोनों के पीछे थोड़े अन्तर पर चलने लगे। चलते-चलते वह सन्यासी बहुत दूर एक घोर जङ्गल में पहुँचा, उसके पीछे

राजकन्या भी उसी जंगल में पहुँची, आगे चल कर वह सन्यासी बिल्कुल अदृश्य होगया। बेचारी राजकन्या बड़ी दुखी हुई और घोर अरण्य में भयभीत होकर रोने लगी। इतने में राजा और सन्यासी दोनों उसके पास पहुँच गये और उससे बोले—'राजकन्ये! डरो मत, इस जङ्गल में तेरी रक्षा करके हम तेरे पिता के पास तुझे कुशल पूर्वक पहुँचा देंगे। परन्तु अब अँधेरा होने लगा है, इसलिये पीछे लौटना भी ठीक नहीं, यह पास ही एक बड़ा वृक्ष है, इसके नीचे रात काट कर प्रातःकाल ही हम लोग चलेंगे।" राजकन्या को उनका कथन उचित जान पड़ा और तीनों वृक्ष के नीचे रात बिताने लगे।

उस वृक्ष के कोटर में पक्षियों का एक छोटा सा घोंसला था, उसमें वह पक्षी, उसकी मादी और तीन बच्चे थे, एक छोटा सा कुटुम्ब था। नर ने स्वाभाविक ही घोंसले से जरा बाहर सिर निकाल कर देखा तो उसे यह तीन अतिथि दिखाई दिये। इसलिये वह गृहस्थाश्रमी पक्षी अपनी पत्नी से बोला-प्रिये! देखो हमारे यहाँ तीन अतिथि आये हुए हैं, जाड़ा बहुत है और घर में आग भी नहीं है।" इतना कह कर वह पक्षी उड़ गया और एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा कहीं से अपनी चोंच में उठा लाया और उन तीनों के आगे डाल दिया। उसे लेकर उन तीनों ने आग जलाई। परन्तु उस पक्षी को इतने से ही सन्तोष न हुआ, वह फिर बोला—"ये तो बेचारे दिन भर के भूखे जान पड़ते हैं, इनको खाने के लिये देने को हमारे घर में कुछ भी नहीं है। प्रिये, हम गृहस्थाश्रमी हैं और भूखे अतिथि को विमुख करना हमारा धर्म नहीं है, हमारे पास जो कुछ भी हो इन्हें देना चाहिये, मेरे पास तो सिर्फ मेरा देह है, यही मैं इन्हें अर्पण करता हूँ।" इतना कह कर वह पक्षी जलती हुई आग में कूद पड़ा। यह देख कर उसकी स्त्री विचार करने लगी कि 'इस छोटे से पक्षी को खाकर इन तीनों की तृप्ति कैसे होगी? अपने पति का अनुकरण करके इनकी तृप्ति करना मेरा कर्त्तव्य है।' यह सोच कर वह भी आग में कूद पड़ी। यह सब कार्य उस पक्षी के तीनों बच्चे देख रहे थे, वे भी अपने मन में विचार करने लगे कि—"कदाचित् अब भी हमारे इन अतिथियों की तृप्ति न हुई होगी, इसलिये अपने मा बाप के पीछे इनका सत्कार हमको ही करना चाहिये।" यह कह कर वे तीनों भी आग में कूद पड़े।

यह सब हाल देख कर वे तीनों बड़े चकित हुए। सुबह होने पर वे सब जङ्गल से चल दिये। राजा और सन्यासी ने राजकन्या को उसके पिता के पास पहुँचाया। इसके बाद सन्यासी राजा से बोला—"राजा अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला चाहे जिस परिस्थिति में हो श्रेष्ठ ही समझना चाहिये। यदि गृहस्थाश्रम स्वीकार करने की तेरी इच्छा हो, तो उस पक्षी की तरह परोपकार के लिये तुझे तैयार रहना चाहिये और यदि सन्यासी होना चाहता हो, तो उस यति की तरह राजलक्ष्मी और रति को भी लज्जित करने वाली सुन्दरी तक की उपेक्षा करने के लिये तुझे तैयार होना चाहिये। कठोर कर्त्तव्य धर्म को पालन करते हुए दोनों ही बड़े हैं।

दूसरों की सेवा करना अपनी ही सेवा करना है।

× × × ×

पूर्ण मनुष्यत्व पाने के लिये अपने आप को वश में करो।

× × × ×

मर्यादा पूर्ण साहस और विचार पूर्ण विनोद, वृद्ध और युवा सब के लिये उदासी की अच्छी दवा है।

× × × ×

मन तथा शरीर की थकान उतारने की, रोगियों के रोग दूर करने की, दरिद्रों को दरिद्र में से निकालने की, दुखियों के दुख दूर करने की, महान् शक्ति ग्रन्थों में है।

महानात्माओं की कृपादृष्टि

[ले०—पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर, आगरा]

दक्षिण देश के एक नगर में धनमदान्ध एक बनियाँ रहता था, वह अपने तुल्य किसी को भी बुद्धिमान् और धनी नहीं जानता था। रात दिन धन कमाने की चिन्ता में लगा रहता था, कभी भी किसी साधु महात्मा तथा ब्राह्मण का सत्कार नहीं करता था, भूल कर भी ईश्वर का नाम नहीं लेता था। दैव योग से एक दिन एक महात्मा उस रास्ते से आ निकले जहाँ पर उस बनिये की दूकान थी। महात्मा उसकी दूकान के सामने जाकर खड़े हो गये और उस बनिये की तरफ देखने लगे। वह बनियाँ अपने धन के मद से ऐसा उन्मत्त था कि उसने आँख उठा कर भी महात्मा की तरफ नहीं देखा, क्यों कि धन का मद बड़ा भारी होता है।

यह दशा देखकर महात्मा को अपने दयालु स्वभाव से उस बनिये पर दया आ गई। मन में सोचा कि इसको इस कीचड़ से निकालना चाहिये। ऐसा विचार करके उस बनिये से कहा कि "राम २ कहो" उसने महात्मा की तरफ न देखा न बोला, जब कि दो तीन बार कहने से भी वह बनियाँ न बोला तब महात्मा ने सोचा कि यह महा मूर्ख तथा अभिमानी है, इस प्रकार यह न मानेगा, इसको दण्ड दिया जावेगा, ऐसा विचार कर महात्मा उस नगर के समीप बहने वाली नदी के तीर पर चले गये। प्रातः काल जब वह बनियाँ नदी पर स्नान करने को गया। तब महात्मा ने अपने योग-बल से अपना रूप उस बनिये के रूप के समान बना लिया, वह तो अभी स्नान ही कर रहा था, महात्मा उस बनिये का रूप धारण करके उसके घर की तरफ चल दिये। घर पर पहुँचते ही उस बनिये के लड़कों ने देखा कि पिता जी आज जल्दी स्नान करके आ गये, पूछा कि पिता जी! आज जल्दी आने का क्या कारण है? महात्माने उत्तर दिया कि "आज एक इन्द्रजाली हमारी सूरत बना कर आवेगा, हम देख आये हैं। वह चाहें जिसकी सूरत बना लेता है। तुम लोगों को सजग रहना चाहिये। जब वह तुम्हारे यहाँ आवे उसे घर में मत घुसने देना, धक्के देकर निकाल देना, यदि वह घर में घुसने का आग्रह करे तो दो चार जूते भी लगा देना" ऐसा कह कर महात्मा जी भोजन करके घर के कमरे में पलङ्ग पर लेट गए।

उधर बनियां स्नान करके घर को आया, ज्यों ही घर में घुसने लगा, उसके छोटे पुत्र ने डाटा, कहने लगा कौन है, किधर जाता है। बनियाँ बोला क्या तुमने भांग पी ली है, जो पागलों की सी बातें करते हो। यह कहकर घर में घुसने लगा, छोटे लड़के ने हाथ पकड़ कर बनिये को दरवाज़े से बाहर कर दिया, कहने लगा कि मेरे पिता जी तो कमरे में लेटे हैं, तू तो मायावी [इन्द्रजाली] है। मेरे पिता का रूप बनाकर घर में घुसना चाहता है, बनियाँ घबड़ाकर कहने लगा कि बेटा बाप तो तुम्हारा मैं ही हूँ, मुझे घर में जाने से क्यों रोकते हो. भोजन पाकर झटपट दूकान पर जाऊँ। ग्राहक लौटे जाते होंगे, क्या तुमको किसी ने बहका दिया है, जो मेरे जीते जी मेरी सम्पत्ति के मालिक बन के मुझे निकाल देना चाहते हो। इतने में बड़ा लड़का भी आ गया। दोनों ने मिलकर उसे खूब पीटा धक्के लगाकर घर से दूर भगा दिया।

बनिये ने जाकर उस शहर के हाकिम से फरयाद की कि मेरे बेटों ने मुझे घर से निकाल दिया है, मेरी सम्पत्ति अपने अधिकार में करली है। हाकिम ने बनिये के दोनों लड़कों को बुलाकर कुल हाल पूछा, उन्होंने उत्तर दिया कि हुजूर हमारे पिता जी तो घर में मौजूद हैं। यह तो कोई बहुरूपिया—ठग है, जो हमारे पिता जी का रूप बना कर घर में घुसकर हमको ठगना चाहता है। हाकिम ने लड़कों से कहा कि अच्छा अपने पिता जी को घर से लिवा लाओ, लड़के अपने पिता जी [महात्मा]

को तुरन्त लिवा लाये, हाकिम दोनों की एक सी सूरत देखकर अचम्भे में पड़ गया। सोचने लगा क्या किया जावे, दोनों का अङ्ग प्रत्यङ्ग एक ही सा मिलता है। बोल-चाल एक सी है, किसको असली पिता कहा जावे, किसको नक़ली। तब महात्मा कहने लगे कि "श्रीमान् यदि यह असली पिता है, तो इस बात को बतलावे कि बड़े लड़के के विवाह में कितना रुपया लगा था। तथा जब मकान बना था, उसमें कितनी रकम खर्च हुई थी, यदि यह न बता सके, तो मैं बतलाता हूं, बनियाँ बोला कि मुझे ज़बानी याद नहीं है, महात्मा ने दोनों रकमें रुपये आना, पाई से ठीक बतला दीं, बस फिर क्या था, हाकिम ने तुरन्तु हुक्म दे दिया, उस बनिये से कहा कि ६ घंटे के अन्दर शहर से निकल जाओ, वर्ना जेल में डाल दिये जाओगे।

अब तो बनिये का धन-मद उतर गया। अपने भाग्य को धिक्कारता हुआ नदी के किनारे पर बैठ कर रोने लगा। सन्ध्या को महात्मा जी जब नदी पर स्नान करने को गये, तब उन्होंने अपना असली रूप महात्मा का धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि वह बनियाँ दिन भर का भूखा-प्यासा फूट-फूट कर रो रहा है, महात्मा जी ने उसके समीप जाकर कहा कि "लाला जी, राम राम कहो" सब दुःख दूर हो जायगा। महात्मा के वचन सुनकर बनियाँ काँपने लगा और ज़ोर से 'राम राम" पुकारने लगा। जब महात्मा ने देखा कि अब इसको राम राम की तन, मन से रटन लग गई है, तब महात्मा बोले अब तू धक्के और जूते खाकर राम राम पुकारने लगा है। यदि तू पहिले ही राम नाम से प्रेम रखता तब क्यों धक्के और जूते खाकर घर से निकाला जाता। जिन लड़कों के लिये तैंने अनेक अनर्थ करके धन कमाया उन्हीं लड़कों ने तुझे जूते मार कर घर से निकाल दिया। फिर भी तू अगर बेटों के प्रेम तथा मोह में फँसकर राम नाम का स्मरण न करेगा, तो भविष्य में तेरी इससे भी बुरी दशा होगी। अरे! तैंने अपना जीवन व्यर्थ खो दिया। कभी राम नाम भूलकर मुख से न निकाला और न साधू ब्राह्मण की सेवा की।

यह सुनकर वह बनियाँ महात्मा के चरणों पर गिर गया, महात्मा ने कहा कि तेरे घर पर जो लड़कों का पिता पलङ्ग पर लेटा था, मैं ही था, तुझे इस कार्य का दण्ड दिलाने को मैंने ऐसा किया, मैं बहुत समय तक तेरी दूकान के आगे खड़ा रहा, तैंने वाणी से भी सत्कार न किया। तू इतना धनमदान्ध हो गया था। अब तू अपने घर जा आनन्द से रह, पर कभी उन्माद मत करना। धर्म करना, सत्संग करना साधु ब्राह्मण की सेवा करना, ऐसा कहकर महात्मा तो चले गये, उस दिन से वह बनियां भगवान् की भक्ति पूर्वक आनन्द से रहने लगा। दान, पुण्य, भजन करने लगा। पाठक विचार कीजिए कि महात्मा ने किस युक्ति से उस बनिये का जीवन सुधार दिया। धन्य है! ऐसे दयालु परोपकारी महात्मा जो पापियों का भी जीवन सुधारने में प्रयत्न-शील रहते हैं, तभी तो शास्त्र कहते हैं—

> यस्यानुभव पर्यन्तो, बुद्धिस्तत्वे प्रवर्त्तते।
> तद्दृष्टि गोचराः सर्वे, मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः॥

जिसकी बुद्धि अद्वितीय आत्मा में प्रवृत्ति होती है, जो सर्व भूतों में आत्मा ही देखता है; ऐसा पुरुष जिसको कृपा करके देख लेता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

हमारे जीवन के वह क्षण बड़े सुखमय होते हैं, जब हम एकांत में विद्वानों के साथ संभाष करते हैं। अर्थात् पुस्तकें पढ़कर शान्ति और आनन्द प्राप्त करते हैं। सम्बन्धी और मित्र जब दुःख में साथ छोड़ देते हैं, तब ग्रन्थ ही सच्चा साथ देते हैं।

× × × ×

संसार का त्राण योगी करेंगे

(महात्मा अरविन्द घोष की दिव्य वाणी)

आधुनिक समय का सब से बड़ा काम यही है कि वह कुछ पूर्ण योगी मनुष्यों को पैदा करे। इस समय संसार का भविष्य भारतवर्ष के उन्हीं पूर्ण योगियों पर ही निर्भर है। यद्यपि यहाँ काम करने वाले मनुष्य हैं बहुत से, किन्तु भारत के भविष्य के काम के लिये पूर्ण योगी पुरुषों की आवश्यकता है। क्योंकि संसार के जिस विराट् कार्य का भार भारत पर पड़ने वाला है, उसका भार पूर्ण योगी पुरुषों के बिना साधारण बुद्धि जीवी या हृदय जीवी मनुष्य—चाहें वे कितने ही बड़े नेता अथवा कार्यकर्त्ता क्यों न हों—नहीं सँभाल सकेंगे और न उसका सँभालना किसी प्रकार सम्भव ही है।

भविष्य में भारत को जिस विपुल विराट् कर्म का भार अपने ऊपर लेकर खड़ा होना पड़ेगा, उसकी सूचना स्वरूप सारे संसार में एक विचित्र विकाश का होना आरम्भ हो गया है। आगामी तीस चालीस वर्ष के भीतर संसार में एक विचित्र पवित्र परिवर्तन होगा, सारी बातों में ही उलट फेर हो जायगा; उसके बाद जो नवीन जगत् तैयार होगा, उसमें भारत की सभ्यता ही संसार की सभ्यता होगी। भावी भारत का काम केवल भारत के लिये नहीं है, बल्कि समूचे संसार के लिये है। अतएव अब भारत को उन्हीं पूर्ण योगी मनुष्यों की तैयारी में लगना चाहिये जो इतने गुरुतर भार का सँभार करने में समर्थ होंगे। यह काम नीरव मातृ साधन। में ही प्रारम्भ भी हो गया है। योगियों के लिये सब कुछ सम्भव है। शिक्षा, समाज, राजनीति, शिल्प और वाणिज्य आदि सभी क्षेत्रों में योगियों को अपूर्व प्रतिभा, विचित्र सृष्टि तैयार कर सकती है. यह निश्चय है। इस समय योगियों द्वारा ही संसार में एक विचित्र नवीन परिवर्तन भगवान करना चाहते हैं। पूर्ण योगी पुरुषों द्वारा जो कर्म तैयार होगा वही भावी जगत् का सच्चा काम होगा। पूर्ण योगियों को पैदा किये बिना कभी भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। आज उसी का साधन भी चल रहा है।

—अरविन्द मन्दिर से।

उपनिषदों के प्रवचन.

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं
पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥ क० ३-१४

उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों को पाकर [उनके सत्संग से] ज्ञान प्राप्त करो, किन्तु जैसे छुरी की धार अतीव तीक्ष्ण होती है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों के इस मार्ग को अत्यन्त दुर्गम बतलाया है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम् ॥ मुण्डक ३-२-२

यह आत्मा व्याख्यान से नहीं मिलता, न बुद्धि से और न बहुत सुनने पढ़ने से। यह आत्मा जिसे चुनता है, जिस पर अनुग्रह करता है, उसी को प्राप्त होता है। उसी कृपा-पात्र के सम्मुख यह अपने आपको प्रगट करता है।

नायमात्मा बल हीनेन लभ्ये, न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वान्, तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ मुण्डक ३-२-४

यह आत्मा निर्बल व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होता, प्रमाद, तप और चिन्ह त्याग अर्थात् सन्यास से भी नहीं मिलता। जो विद्वान् इन त्याग आदि उपायों से बराबर यत्न करते रहते हैं, उनको यह आत्मा प्राप्त होता है और वे ब्रह्मधाम में प्रवेश करते हैं।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं यशन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥

मुण्डक ३—१—५

निश्चय से यह आत्मा सत्य, तप, सम्यग् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। अन्दर शरीर में यह शुभ्र और ज्योतिर्मय है, जिसके दर्शन संयमी पुरुषों को होते हैं, जिनके दोष नष्ट हो चुके हैं।

परमहंस—
रामकृष्णजी के उपदेश

सूर्य्यास्त के बाद गगन में बहुत से तारागण दिखाई देते हैं। सूर्योदय होते ही लुप्त हो जाते हैं, अतः मनुष्य को चाहिये कि वह यह न समझें कि दिन में तारे रहते ही नहीं।

अतः प्रिय सज्जनो; मोह के वशीभूत होकर ईश्वर को न पहचान सको, तो यह न कहना चाहिये कि ईश्वर है ही नहीं।

जल एक ही वस्तु है। किन्तु कोई पानी, नीर, तोय अथवा कोई वारि के नाम से इस वस्तु को बोलते हैं। इसी तरह सच्चिदानन्द है तो एक ही, लेकिन कोई अल्ला, ईश्वर, परमात्मा आदि नामों से आराधना करते हैं।

एक दिन दो मनुष्य आपस में बातें करते जा रहे थे। उनकी निगाह एक गिरगिट पर पड़ी, एक ने कहा—भाई इसका रंग लाल है। दूसरे ने कहा नहीं नीला है। वे इस पारस्परिक कलह को मेटा न सके। थोड़ी देर में एक मनुष्य के पास पहुँचे, जो कि उस बाग़ का माली था, पहले ने आंखें बदल कर कहा-क्या यह लाल रङ्ग का नहीं है? तब वह माली बोला-हाँ है तो सही, तब दूसरा बोला नहीं नीला है। तब वह बोला हाँ है। उसे मालूम था कि गिरगिट रंग बदला करता है। अतः जिसने ईश्वर को एक ही रूप माना है, उस को भगवान एक ही प्रकारका है कि जिसने भगवान के कई रूप देखें हैं, वह जान सकता है कि ईश्वर के तरह २ के स्वरूप हैं।

शहरों में बिजली के ज़रिये सब जगह प्रकाश पहुँचता है। किन्तु उसका केन्द्र एक ही जगह होता है। इसी प्रकार सब देशों तथा सब युगों में धर्म का ज्ञान कराने वाले महात्मा बिजली के स्तम्भ जैसे लगे हैं। साधारण मनुष्यों को इन्हीं खम्भों के द्वारा सर्व शक्तिशाली परमेश्वर से प्राप्त हुए आत्म ज्ञान का प्रचार निरन्तर होता रहता है।

पारस पत्थर से लोहे का स्पर्श हो जाने से वह सुवर्ण हो जाता है। फिर वह जमीन में तथा किसी गड्ढे में फेंक दिया जाय, तो भी सोना ही रहता है। लोहा नहीं हो सकता है। इसी तरह जिसका हृदय परमेश्वर के चरण कमलों के स्पर्श से पवित्र हो गया, फिर वह अपवित्र नहीं हो सकता, चाहे वह जङ्गल में रहे, अथवा संसार के झगड़ों में।

लोहे की कटार को पारस पत्थर का स्पर्श हो जाने से उसकी शक्ल तो वैसी ही बनी रहती है, किन्तु वह सुवर्ण की हो जाती है और वह अपना काम ज्यों का त्यों करती है। इसी तरह से भगवान के चरण स्पर्श से हृदय तो निर्मल हो जाता है, किन्तु सूरत वैसी ही रहती है और किसी को हानि भी नहीं पहुंचती है

दुग्ध और जल को एक साथ मिला देने से रङ्ग तो एक ही हो जाता है, किन्तु जब मक्खन निकाल लिया जाता है, तो वह ऊपर तैरता रहता है, मिलता नहीं। इसी तरह जब जीव को ब्रह्म ज्ञान हो जाता है, तो वह सांसारिक झगड़ों में रहते हुए भी बुरे संस्कारों के वशीभूत नहीं हो सकता है।

जिस तरह सकरकन्दी तथा आलू को गरम जल में उबालने से मुलायम हो जाता है, उसी तरह कठिन तप से तपस्वी मनुष्य सिद्ध होकर कारुण्यता से परिपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य नसेनी तथा बांस रख कर मकान की छत पर पहुंच जाता है। इसी प्रकार ईश्वर को चाहने वाला मनुष्य किसी न किसी रास्ते से प्राप्त कर ही लेता है। संसार का हर एक धर्म इन मार्गों में से एक मार्ग को प्रदर्शित करता है।

कई बच्चों वाली मा किसी बेटे को जेवर, किसी को मिठाई, किसी को खिलौना देकर अपना काम करती है, उस समय वे भी अपनी माता को भूल जाते हैं। किन्तु कोई बालक अपनी चीज को गेर देता है और रोने लगता है तो माँ फिर आकर चुप करती है। इसी तरह प्रिय महानुभावो! तुम सांसारिक बन्धनों तथा घमण्ड में मस्त होकर अपनी जगन्माता को भूल गये और खिलौने खेलने लगे। इनको छोड़ते ही तुम्हें माता की याद आवेगी और वह भी शीघ्राति शीघ्र तुम्हें गोद में बैठावेगी।

किसी तालाब में लम्बी २ घास खड़ी हो, तो उसका पानी देखना हो, घास को उखाड़ कर देख सकते हैं। इसी तरह ईश्वर को देखना हो तो जो आँखों पर माया का परदा पड़ा हुआ है, उसे हटा कर देख सकते हैं।

जन्मदाता हमको क्यों नहीं दीखता, जैसे परदे के भीतर श्रेष्ठ वंशोत्पन्न स्त्री को कोई नहीं देख सकता है। वह सबको देख लेती है। उसी प्रकार ईश्वर के भक्त ही माया के परदे के पीछे जाकर उसे देख लेते हैं।

अत्यन्त अन्धकारमय स्थान पर दीपक लाते ही अँधेरा दूर हो जाता है। इसी तरह भगवान की कृपा से असंख्य जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

सत्वाधिकारी वृक्ष मलय पर्वत की हवा से चन्दन हो जाते हैं और जो वृक्ष सत्वहीन होते हैं, वे ज्यों के त्यों रहते हैं। इसी तरह भक्तिशाली तथा पुण्यात्मा मनुष्य परमेश्वर की कृपा की पवनधारा से पवित्र हो जाते हैं। प्रपंची ज्यों के त्यों रहते हैं।

मनुष्य तकिये की खोली के समान है। किसी का रङ्ग नीला, किसी का काला, हरा, पीला आदि कई रङ्ग की खोलियाँ होती हैं। परन्तु रुई सब में है। ऐसे ही सज्जन, दुर्जन, सुन्दर तथा काले रङ्ग के आदमी होते हैं, परन्तु ईश्वर सब में है।

प्रेम और मोह

[श्री हरि भाऊ उपाध्याय]

प्रेम आत्मिक और मोह शारीरिक है। अर्थात् जब तक आत्मिक गुणों के प्रति आकर्षण है, तब तक वह प्रेम का आकर्षण है, जब शारीरिक सौन्दर्य या शारीरिक भोग की ओर आकर्षण होने लगे, तो समझो कि यह मोह का आकर्षण है और अपने को सँभालो। एक सुन्दर पुष्प को हम देखते हैं, उसके दैवी सौन्दर्य पर मुग्ध होते हैं, उसमें ईश्वरीय छटा के दर्शन करते हैं, यह प्रेम हुआ। जब इसे तोड़ कर सूंघने या माला बनाकर धारण करने का मन हुआ, तो समझो, मोह के शिकार हो रहे हैं।

दूसरे, प्रेम में जिसे हम प्रेम करते हैं, उसके प्रति त्याग उत्कर्ष, सेवा करने का भाव होता है, मोह में भग. सुख, सेवा लेने की चाह रहती है। प्रेम स्वयं कष्ट उठाता है, प्रेम पात्र को कष्ट पहुँचाना नहीं चाहता। उसकी उन्नति चाहता है, अधोगति नहीं। मोहित व्यक्ति अपने सुख की अनियंत्रित इच्छा के आगे प्रेम पात्र के कष्ट और दुख की परवा नहीं करता, उसकी रुचि अच्छे खान पान, साज शृङ्गार, नृत्य, नाटक, सिनेमा, आमोद प्रमोद में होगी। जहाँ कि एक प्रेमी उसके मानसिक नैतिक और आत्मीय गुणों तथा शक्तियों के विकाश में उसकी योजनाओं और कार्यक्रम में मग्न रहेगा।

प्रेम से मोह, मोह से भोग, भोग से पतन, यह अधोमुख जीवन की उत्तरोत्तर क्रम है, प्रेम से सेवा, सेवा से आत्म शुद्धि, आत्म] शद्धि से आत्मोन्नति ऊर्ध्वगति जीवन का क्रम है। प्रेम से हम मोह की तरफ बढ़ रहे हैं या सेवा की तरफ, यही हमारे आत्म परीक्षण की पहली सीढ़ी है।

—सर्वोदय।

शिखा के लाभ

ले०-वि० रामस्वरूप'अमर' साहित्य रत्न,तालवेहट]

(४)

शिखा रखने का और प्रयोजन यह भी है कि जब यज्ञादि के द्वारा अमोघ तेजः प्राप्ति होता है, तो शरीर-गत उष्णता [उष्मा] प्रबल हो जाती है, उसे तो बाहर जाना ही चाहिये। उसे निष्क्रमण-मार्ग देने के लिये शिखा आवश्यक है। जिस तरह तालाबों के पानी की रक्षा के लिये उनके किनारे, बांध वग़ैरह बाँधे जाते हैं और जल की स्वच्छता के लिये पानी जाने को नाली या नहर वग़ैरह बनाई जाती है। उसी प्रकार "शिखा-बन्धन" के समय वह तेज कुछ समय तक रुक जाता है और शिखा खोलने से प्रवाहित बनता है। यह अर्थ सातवें गण के परस्मैपदी 'शिख्' धातु के शेष रखना या रहना, बचना या पृथक् होना, इस अर्थ को बताने वाली धातु से निकलता है। जब इच्छा सहित त्रिगुणात्मक क्रिया शक्ति पर जय प्राप्त हो जाय, तब जटा या शिखा का त्याग करना चाहिये ! जैसे सरोवर के जल को स्वच्छ रखने के हेतु नहर या नाली के निकालने की आवश्यकता रहती है, ताकि सरोवर का पानी स्वच्छ और निरोगताप्रद बना रहे। इसी प्रकार हमारे इस मानस-सरोवर के बुरे विचार रूपी जल से हमारा सारा-मानस सरोवर गदला न हो जाय, इसी लिये शिखा द्वारा उस कुविचार-रूपी-जल का बहिर्निष्कासन आवश्यक है। प्राचीन-समय में ब्रह्मचारी, यती, वानप्रस्थ, मुनि, महात्मा लोग अपने शिर पर टोपी या पगड़ी नहीं रखते थे, उनके वीर्य की रक्षा उनको प्राकृतिक टोपी या पगड़ी जिन्हें केश ही समझिये, करते थे। The Harmonial man पुस्तक में अमेरिकन डाक्टर 'एण्ड्रोजेक्शन डेविस' बतलाते हैं कि शिर, दाढ़ी; मूँछ के बालों को ईश्वर ने वीर्य-रक्षा के लिये ही बनाया है। इनका यह दृढ़ कथन है कि जिनके शिर और दाढ़ी, मूँछ के बाल बड़े होते हैं, उनके शारीरिक-वीर्य की वृद्धि इतर मनुष्यों से अच्छी पाई जाती है। बालों से वीर्य रक्षा में जो सहायता मिलती है, वह अन्य कृत्रिम-उपायों से नहीं हो सकती है। यह बातें प्राचीन ऋषि महर्षियों को अच्छी तरह मालूम थीं, इसी से उन्होंने अपने ग्रन्थों में जटा आदि रखने का उपदेश दिया है। हारीत-मुनि ने कहा है कि—

स्त्री शूद्रौ तु शिखां छित्वा क्रोधाद् वैराग्यतोऽपि वा।
प्राजापत्यं प्रकुर्व्वीत निष्कृति र्नान्यथा भवेत् ॥

जब क्रोध या वैराग्य से स्त्री और शूद्र-जाति तक के लिये प्राजापत्य प्रायश्चित्त बतलाया है, तो अन्य वर्णों की प्रतिक्रिया या प्रायश्चित्य-क्रिया क्या हो सकती है ? यह धार्मिक, वैज्ञानिक नैतिक समाजी स्वयं सोच सकते हैं। हाँ ! यह बात दूसरी है कि आप अपने शिर पर पूरे बाल, नहीं रख सकते, तो न सही किन्तु महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों की भाँति अर्धकेश यानी गो-खुर बराबर शिखा तो अवश्य ही रखना चाहिये। इससे मार्मिक-स्थल की रक्षा ही नहोगी, साथ साथ आयुवृद्धि होते हुये आपकी धर्म-प्रियता का महान् चिह्न भी होगा। श्री एमसे इजरेल कहते हैं—जिस समय सब लोग मुंडन कराने लगेंगे, उस वक्त प्रत्येक व्यक्ति निर्बल बन जायगा। इसलिये मनुष्यों को मूँड़ मुड़ा कर दुर्बल नहीं होना चाहिये। मृत-व्यक्तियों की क्रियादि में भी ऐसा नहीं करना चाहिये।"

वास्तव में यह कथन भी यथार्थ है—जब से हमने मुंडन को महत्व दे दिया, तभी से हम कमजोर से बन गये हैं। प्राचीन पुरुषों जैसी हम में मानसिक, शारीरिक या नैतिक शक्ति भी नहीं रही। "हाथ कंगन को आरसी क्या" ? हमारे सामने सिखों का उदाहरण ही मौजूद है। उनमें

जितना सौन्दर्य, बल, सहनशीलता आदि होते हैं, उतनी हम मूंड मुड़ाने वाले रईसों में भला कहाँ से आ सकती है। वीर हकीकत राय से जिस समय नवाब ने यह कहा कि तुम मुसलमानी गिलास से एक गिलास पानी पीलो, तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा और फाँसी से मुक्त कर दूंगा।" किन्तु—हकीकत राय ने उस पानी पीने से मरना ही श्रेयस्कर समझा और अपने धर्म के लिये मर कर अपना अमर नाम कर लिया। एक समय ऐसा था कि कितनी ही जातियों में शिखा रखने की प्रथा थी। उसका सम्बन्ध वे काल रक्षा के साथ मानते हुए अपना धर्म समझते थे। किन्तु आज "समयमेव करोति बलाबलम्" की उक्ति चरितार्थ हो रही हैं, जिससे हम उसके रहस्य ही को ही भूल बैठे हैं। शिखा रखने की महत्ता को हमारे आर्य-वैदिक ग्रन्थ-शास्त्रों ने ही नहीं मानी है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने भी शिखा की महत्ता मानी है और वह कई जातियों में प्रचलित भी थी।

दर्पण में अपना मुख देखकर उसमें जो कुछ दोष होता है, उसे निकाल कर तुम अपने मुख की कांति बढ़ाने का प्रयत्न करते हो। तुम्हारा चरित्र भी एक प्रकार का दर्पण है, जिसमें कि तुम अपने स्वभाव से भूषण-दूषण और गुण दोषों को भली प्रकार देख सकते हैं, जिसे देख कर तुम दूषणों का नाश और भूषणों में वृद्धि करने के लिए सचेत हो जाओगे। इसलिए महान् पुरुषों के चरित्रों का अध्ययन करो और अपने को सच्चरित्र बनाओ।

× × ×

जब तुम्हारा मन अनुचित कार्यों में लगना चाहे, तुम्हारे सदाचार में उत्साह कम मालूम पड़े, तब तब तुम महान पुरुषों के चरित्रों को पढ़ो, तुम अवश्य पुनः सावधान हो जाओगे।

× × ×

मेरी झोली

(ले० आनन्द कुमार चतुर्वेदी "कुमार" छिबरामऊ)

मैं उसके द्वार पर गया, उसने मुस्कराते हुये मेरी झोली भर दी। मैं आनन्द विभोर हो उठा। उसकी विशेष कृपा देख कर मैं घर की ओर चल दिया। मैंने घूम कर देखा, वह हँस रहा था।

× × × ×

गुलाबी बादलों को लांघ कर घर आया, लोग मुझे देख कर आश्चर्य कर रहे थे। अब मुझे किसी के आगे हाथ पसारने की आवश्यकता न थी। मेरा भवन बादलों को चूमने लगा। द्वार पर द्वारपाल खड़े थे।

× × × ×

कौन? आज प्रातःकाल ही मेरा द्वार कौन खट-खटा रहा है? मैंने खिड़की से झांक कर देखा। इतने सबेरे! मैं बाहर आया और उससे पूछा "क्या है?" वह खाली झोली लिये चल दिया उसने घूम कर मेरी ओर देखा और हँस पड़ा।

× × × ×

मैं सोचने लगा, एक दिन मैं भी तो खाली झोली लेकर आया था। मैं भी तो ऐसा ही था न जाने क्या देख कर उन्होंने मेरी झोली भरदी, पर दूसरे ही क्षण मैंने सोचा यह तो विधिका विधान है परन्तु मैंने एक एक दिन देखा मेरी झोली खाली पड़ी है। मैं फिर झोली लेकर उसके पास चल दिया। वह आज भी हँस रहे थे। परन्तु आज मैंने देखा कि उनकी दृष्टि और किसी पर थी। मैं खाली झोली लेकर लौटा। मार्ग में फिर वही मिला। मैंने अपने पास कुछ न देख कर उसे अपनी खाली झोली दे दी। वह प्रसन्न होता हुआ चला गया।

× × × ×

परन्तु यह क्या—मेरी झोली भर कर मेरे द्वार पर कौन रख गया?

ज्ञानी कौन है ?

(ले०—शिवकुमार झा अध्यापक, टिहिया)

कोई प्रश्न करे कि "ज्ञानी कौन है ?" तो इसके उत्तर में कुछ भी नहीं कहा जा सकता । जो कहता है कि मुझे ज्ञान हो गया, उसे ज्ञानी नहीं कहना चाहिये; क्योंकि यों कहने से ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीन पदार्थ सिद्ध होते हैं । जो कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ, वह भी ज्ञानी नहीं; क्योंकि वह स्पष्ट कहता है । जो यह कहता है कि मुझे ज्ञान हुआ कि नहीं मुझे मालूम नहीं, सो भी ज्ञानी नहीं है । क्योंकि ज्ञानोत्तर काल में इस प्रकार सन्देह नहीं रह सकता । यदि शरीर को ज्ञानी कहा जाय, तो जड़ शरीर का ज्ञानी होना सम्भव नहीं । यदि जीव को ज्ञानी कहा जाय, तो ज्ञानोत्तर काल में उस चेतन की जीव संज्ञा नहीं रह सकती । यदि शुद्ध चेतन तत्व को ज्ञानी कहा जाय, तो भी अपराध है; क्यों कि शुद्ध चेतन तत्व तो कभी अज्ञानी हुआ ही नहीं, इसलिये यह नहीं बतलाया जा सकता कि "ज्ञानी कौन है" ! ज्ञानी की कल्पना अज्ञानी के अन्तःकरण में है । शुद्ध चेतन तत्व की दृष्टि में तो कोई दूसरा पदार्थ है ही नहीं । ज्ञानी को जब दृष्टि ही नहीं रहती, तो फिर सृष्टि कहाँ रहती ? अज्ञानी जन इस प्रकार कल्पना किया करते हैं कि इस शरीर में जो जीव था सो समष्टि चेतन तत्व में मिल गया ! समष्टि चेतन तत्व के जिस अंश में अन्तःकरण का अध्यारोप है, उस अन्तःकरण सहित उस चेतन तत्व का नाम ज्ञानी है । वास्तविक दृष्टि में ज्ञानी किसकी संज्ञा है, कोई भी नहीं बतला सकता । क्योंकि ज्ञानी की दृष्टि में तो ज्ञानीपन भी नहीं है । ज्ञानी अज्ञानी की कल्पना केवल लोक-शिक्षा के लिये है और अज्ञानियों के अन्दर ही इसकी कल्पना है ।

भला जो गुणातीत है, उसमें लक्षण कैसे ? लक्षण तो अन्तःकरण में बनते हैं और अन्तःकरण से होने वाली क्रिया त्रिगुणात्मिका है, इसलिये यह नहीं बतलाया जा सकता कि "ज्ञानी कौन है" ।

महात्मा ईसा के उपदेश

(मत्ती रचित इञ्जील से)

धन्य हैं वे जिनका मन अहंकार रहित है, क्यों स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है । धन्य है वे जो अपनी भूलों के लिये पश्चात्ताप करते हैं क्योंकि वे शान्ति पायेंगे । धन्य हैं वे जो नम्र हैं, क्योंकि वे पृथ्वी के अधिकारी होंगे । धन्य हैं वे जिन्हें धर्म की क्षुधा और पिपासा हैं, क्योंकि वे तृप्त किये जावेंगे । धन्य हैं वे जो दयावान् हैं, क्योंकि उन पर दया की जायगी । धन्य हैं वे जिनके हृदय पवित्र हैं क्योंकि वे परमेश्वर का दर्शन करेंगे । धन्य हैं वे जो ऐक्य का प्रचार करते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के सच्चे पुत्र कहलावेंगे । धन्य हैं वे जो धर्म के लिये कष्ट सहते हैं, क्योंकि स्वर्ग पर उन्हीं का अधिकार होगा ।

दुनियादार कहते हैं—जैसे को तैसा, लात का जवाब लात और घूंसे का घूंसा । पर मैं तुम से कहता हूँ कि दुष्टों से भी बदला मत लो, जो तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे उसकी ओर दूसरा गाल फेर दो । जो तुम्हारा कुर्ता लेना चाहे उसे अपना लिहाफ़ भी दे दो । जो तुम से कोस भर बेगार लेना चाहे उसके साथ दो कोस चले जाओ । जो तुमसे माँगे उसे दे दो । ऋण बाँटने में मुँह न मोड़ो ।

लोग कहते हैं कि मित्र से मित्रता करो और शत्रु से द्वेष । पर मैं तुमसे कहता हूँ कि—अपने बैरियों से प्रेम रखना और सताने वालों के लिये प्रार्थना करना, इससे तुम परमात्मा की श्रेष्ठ सन्तान सिद्ध होगे, तुम्हारा पिता धर्मी और अधर्मी दोनों के यहाँ मेह बरसाता है, सूर्य भले और बुरे दोनों पर ही उदय होता है । यदि तुम अपने मित्रों से ही प्रेम करो तो नीच लोगों में और तुममें क्या अन्तर रह जायगा ? यदि तुम अपने भाइयों को ही नमस्कार करो तो क्या बड़ा काम करोगे ? ऐसा तो सब कोई करता है । तुम्हें ऐसा ही उदार बनना चाहिये, जैसा कि परमपिता परमात्मा है ।

कलियुग अभी शेष है

[श्री श्याम जी शर्मा काव्यतीर्थ भदबर, आरा]

मथुरा निवासी पं० राधेश्याम का कलियुग संबन्धी लेख अखण्ड ज्योति गत अंक में देख कर सम्पूर्ण चाव के साथ पढ़ गया।

अखण्ड ज्योति पृष्ठ ३२ पर लिखा है-"सूर्य्य की उत्तर दक्षिण गति को ही दिव्य वर्ष कहते हैं। जिसकी गति ३६० संख्या है। अर्थात् उत्तरायण के ६ मास और दक्षिणायन के छै मास के ३६० दिन रात मनुष्यों के हुए। इसी को दिव्य वर्ष कहते हैं।

आप के मत से ३६० दिन रात ही दिव्य वर्ष है, पर यह सरासर गलत और भ्रान्ति मूलक है। मनुस्मृति अ० १ श्लोक ६७ इस तरह है।

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः,
अहस्तत्रोदगयनो रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्।

तिस पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं। "मानुषाणां वर्षं देवानां रात्रिदिने भवतः" अर्थ-मनुष्यों का एक वर्ष देवों का रात दिन होता है और छः महीना दक्षिणायन रात है। इस मनु वाक्य से स्पष्ट है, कि मनुष्योंके ३६० दिन रात अर्थात् एक वर्ष देवोंका एक रात है। इस हिसाब से मनुष्यों के ३६० वर्ष का एक देव वर्ष हुआ। और ४००० दिव्य वर्ष का सत युग होता है। ४०० दिव्य वर्ष की संध्या और ४०० दिव्य वर्ष का संध्यांश। इस तरह ४८०० दिव्य वर्ष का सतयुग होता है। यथा—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्
तस्य तावच्छ्नी संध्या संध्यांश श्च तथा विधः।
॥ मनु० १-६९ ॥

३६०० दिव्य वर्ष का त्रेता होता है। २४०० दिव्य वर्ष का द्वापर और १२०० दिव्य वर्ष का कलियुग। इस तरह चारों युग का योग ४८००+३६००+२४००+१२००=१२००० दिव्य वर्ष का चारों युग होता है। जो चार युग की संख्या कह चुके वही १२००० दिव्य वर्ष का देवों का १ युग होता है।

मनु के ६७ से ७१ तक के श्लोकों में स्पष्ट कहा है कि कलियुग १२०० दिव्य वर्ष का होता है। ६७ में है कि मनुष्यों के ३६० दिन का देवों का एक दिन होता है। मनुष्यों के ३६० वर्ष का देवों का १ वर्ष होता है, कलियुग देवों के १२०० वर्ष का होता है, अतः १२०० दिव्य वर्ष को ३६० मानुष वर्ष से गुणा करने पर १२००×३६०=४३२००० मनुष्य वर्ष का कलियुग होता है। अभी कलियुग का केवल ५०४२ मानुष वर्ष बीता है। तब "कलियुग समाप्त हो रहा है" कैसे?

ऐसी ही भूल 'चेतावनी' के लेखक महात्माजी ने की, जिन्होंने उलटी गिनती कर ४८०० मानुष वर्ष कलियुग की संख्या मानी है। मनुस्मृति से कलियुग की आयु ४८०० मानुष वर्ष कभी सिद्ध नहीं हो सकता। मनु कहते हैं कि ४८०० वर्ष सतयुग की आयु है [श्लोक ६९] और मनुष्यों के १ वर्ष अर्थात् ३६० रात दिन का एक दिव्य रात दिन होता है [श्लोक ६७] तब किस हिसाब से ४८०० वर्ष कलियुग की आयु होगी? श्लोक ६९ को टीका में कुल्लूक भट्ट ने लिखा है "वर्ष संख्या च इयं दिव्य मानेन।' मनु ने सतयुग की वर्ष संख्या जो ४८०० वर्ष कही यह दिव्य मान से है और प्रमाण में विष्णु पुराण का यह वचन देते हैं।

दिव्यैः वर्ष सहस्रैः तु कृतत्रेतादि संज्ञितम्
चतुर्युगं द्वादशभिः।

सतयुग त्रेता आदि की संज्ञा दिव्य सहस्र वर्ष से है। १२००० दिव्य वर्षों का चार युग होता है। मनु के वचन में और विष्णु पुराण के वचन में कोई भेद नहीं। भेद है उलटी गणना करने में। १२०० मनुष्य वर्ष का सतयुग और ४८०० मनुष्य वर्ष का कलियुग कहना बिल्कुल भ्रान्ति मूलक है। अतएव २००० विक्रम में कलियुग समाप्त होगा। यह किसी महात्मा का झूठा स्वप्न है। जिसको पण्डित राधेश्याम जी ने बिना समझे लिख दिया है।

विपरीत करणी मुद्रा

[ले० योगिराज श्री उमेशचंद्रजी,
रामतीर्थ योगाश्रम बम्बई नं० ४]

प्रथम दोनों पैरों को लम्बे फैला कर बैठ जाना चाहिये। दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखें। कमर, पीठ और शिर समान स्थिति में रखें। छाती को अल्प प्रमाण में फुला के रखे। आँखें बन्द रखें। शरीर को साधारण प्रमाण में तान कर रखें। दोनों नथुनों से पाँच बार घर्षण [श्वास को एक बार पूरक करके तुरन्त ही बहार निकालना यह एक घर्षण कहा जाता है।] कर दोनों नासिका द्वारा पूरक करें यथा शक्ति कुंभक के पश्चात् दोनों नासा रंध्र से रेचक करें। यह एक विपरीत करणी मुद्रा सम्पूर्ण हुई।

मुद्रा का आरम्भ से अन्त तक मूल बन्द कायम रखे। कुंभक के समय में जालंधर बन्द करे और रेचक के समय में उड्डियान बन्द करे। पूरक चार मात्रा और कुंभक १६ मात्रा और रेचक ७ मात्रा का प्रमाण से करे। इसी नियम से प्रकृति और शक्ति के अनुकूल अधिक प्रमाण में पूरक, कुंभक और रेचक की मात्रा बढ़ा सकते हैं।

४ दिनों तक ४ मुद्राऐं, ४ से १० दिनों तक ६ मुद्राएँ, १० से १६ दिन तक ८ मुद्राएँ, १६ से २४ दिनों तक १० मुद्राएँ, २४ से १ महीने तक १२ मुद्राएँ पश्चात् शक्ति, समय तथा लाभ के अनुकल १२ से १६ विपरीत करणी मुद्राएँ कर सकते हैं।

मुद्रा का लाभ

आँखों की दृष्टि बढ़ती है! निद्रा अच्छी आती है, बुद्धि तीव्र और स्थिर होती है। वीर्य सम्बन्धी तमाम रोग नाश होते हैं। कमर की वेदना नष्ट होती है, कंठ का स्वर मधुर बनता है, स्मरण शक्ति बढ़ती है, मन में शुभ विचार आते हैं, अपच रोग नहीं रहता, मल बद्धता नहीं रहती है, मुख पर तेज और और सौंदर्य बढ़ता है, रक्त शुद्ध होता है, फेंफड़े सशक्त बनते हैं, चित्त पवित्र हो जाता है। कार्य कुशलता में प्रवीणता आती है। निरंतर यह मुद्रा करने से सारे शरीर में अनहद शक्ति बढ़ती है। आज्ञा चक्र में से प्रत्येक स्त्री, पुरुषों को चन्द्रामृत टपकता है, उस चन्द्रामृत को कुण्डलिनी शक्ति खा जाती है, किन्तु विपरीत करणी मुद्रा करने वाले स्त्री, पुरुषों का चन्द्रामृत व्यर्थ नहीं जाता है; सारे शरीर में प्रसरता है। इस मुद्राका सतत् अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है। कर्माशत कोश नाश होता है। सर्व अवयव सर्वांग सुन्दर बनते हैं। इतना ही नहीं किन्तु और भी अनेक लाभ इस मुद्रा से प्राप्त होंगे।

इस मुद्रा को १० वर्ष से १०० वर्ष तक के सर्व स्त्री, पुरुष कर सकते हैं। मुद्रा कर २० मिनिट के पश्चात् भोजन कर सकते हैं। रजो दर्शन के समय ५ दिनों तक और गर्भ धारण से लेकर प्रसूति के पश्चात् दो महीने तक स्त्रियाँ नहीं करें। प्रातः काल ४ से ७ बजे तक अभ्यास करने के लिये उत्तम समय है। सायंकाल भी अभ्यास हो सकता है, किन्तु सायंकाल अभ्यास करने से अधिक लाभप्रद नहीं होगा। दिन में एक समय अभ्यास करना चाहिये। हरि ॐ तत् सत्।

अपने परिश्रम से महत्ता और उपयोगिता प्राप्त करके महान् और उत्तम बने हुए पुरुषों के जीवन चरित्र का अवश्य अभ्यास करना चाहिये। ऐसे ऐसे अभ्यास से प्रोत्साहन और उच्च विचार प्राप्त होते हैं।

* * *

दूसरों से प्रेम करना अपने आप से प्रेम करना है।

* * *

जीन जेक रूसो

जो कहारी करते-करते विद्वान् बना था।

बात आज की नहीं करीब एक हजार वर्ष पुरानी है। लायोन्स नगर में एक धनी व्यक्ति के यहाँ एक बड़ा भारी भोज हुआ। दूर-दूर से बड़े-बड़े अमीर, उमराव, वकील, बैरिस्टर, अधिकारी, धर्माचार्य पधारे। आगन्तुक महानुभावों के स्वागत में एक बड़ा शानदार जलसा किया गया।

उन दिनों जलसों में किसी विषय पर बहस मुबाहिसा करते रहने की प्रथा थी। यूनान की पौराणिक कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले कुछ चित्र जलसे के उस प्रमोद भवन में टँगे हुए थे। महमानों में उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ विवाद चल पड़ा। विवाद जब बहुत बढ़ गया तो गृह-स्वामी को निर्णय के लिये बुलाया गया, प्रश्न जब उसके सामने रखा गया तो वह बेचारा कुछ न बता सका, किन्तु उसने अपने एक कहार को बुलाया और आज्ञा दी कि इस चित्र के संबन्ध में आगन्तुक महानुभावों को कुछ बतावे।

कहार ने विनम्र और विश्वसनीय भाषा में उन चित्रों के सम्बन्ध में पुराणों के मर्म रहस्य विस्तार पूर्वक प्रमाणों के साथ समझा दिये। इसमे सब लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ।

एक आगन्तुक ने आदर सहित उससे पूछा—महोदय! आपने किस स्कूल में शिक्षा पाई है? कहार ने विनयपूर्वक कहा—श्रीमन्! मैं किसी स्कूल में नहीं पढ़ सका, किन्तु मैंने 'विपत्ति' की पाठशाला में बहुत कुछ सीखा है।

यह कहार दिनभर परिश्रम करके रोटी कमाता और बचे हुए समय में पढ़ता, अन्त में धुरंधर विद्वान और शास्त्रकार हुआ। दुनिया जानती है कि 'जीन जेक रूसो' कितनाबड़ा पण्डित प्राचीन काल में हो चुका है, उसने कहार का पेशा करते हुए बचे समय में इतना अध्ययन कर लिया था।

तुम क्या हो?

(ले०— श्री० शंकरलाल तिवारी, सागर)

तुम क्या हो? इसे तुम खुद ही नहीं जानते। तुम क्या हो अगर तुम इसे समझ जावो; तो जिस संसार में तुम रहते हो; वह स्वर्ग बन जाय! सफलता और सिद्धियाँ—तुम्हारे चरणों में लोटने लगें. तुम एक दिव्य पुरुष बन जाओ, दिव्य प्रतिभा तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग से फूट निकले। आध्यात्मिक सौन्दर्य की आभाओं से तुम्हारा शरीर दमक उठे। तुम विश्व की महानता में एक अद्भुत प्राणी बन जाओ, प्रकृति तुम्हें नवीन 'चिरजीवन' का वरदान देगी, तुम उसके दुलारे बन जाओगे, लोग तुम्हें वनमाली कहेंगे, मातायें तुम्हें श्यामसुन्दर कहेंगी, सचमुच तुम मनमोहन हो जावोगे।

शरीर छोटा है, हाड़, मांस, रक्त से बना है, इसकी क़ीमत ही क्या है! कल मिट्टी हो जायगा। दुनिया सराय है, आये-चले गये। ये कल्पनाऐं उन दीवानों की हैं, जिन्होंने अपनी एक लगन के ज़रिये दुनिया को ठोकर मार दी, लेकिन उन्होंने धूल में हीरा ढूँढ़ा और समुद्र में मोती खोजा। वे बिरले परवाने के शमाँ पर जल गये, कबीर, रहीम, तुलसी और मीरा आदि। पर जिन्होंने संसार को स्वर्ग समझा, शरीर को सोने की देह समझी, नर से नारायण होने की शक्ति अपने में देखी, उन्होंने इस जीवन को असार नहीं, बेश कीमती समझा, उन्होंने कीचड़ से रतन निकाले।

इस पिंजड़े के अन्दर वे शक्तियाँ सोती हैं, जिनसे तुम एक अमर-प्राणी बन कर परम-पद पा सकते हो। इसी शरीर में कारूं की तरह शक्तियों का खजाना छुपा है, बस पाने की देर है। मन को हाथ में लो, एकाग्रता की राह पकड़ो—उमङ्ग और आनन्द के सुन्दर हार पहन कर आध्यात्मिक-पथ के राही बन जावो; फिर तुम्हें मालूम होगा कि तुम क्या हो।

दूसरों पर दया करो।

[ले०पं० 'उदय' जैन तत्व विशारद, कानौड़]

"कर्म किये सो भोगने पड़ेंगे। हम सहायता क्यों करें? इस पृथ्वी गर्भ में असंख्य प्राणी हैं, किसकी ओर ध्यान दें। ईश्वर ने सबको बराबर दिया। खो दिया तो रोवे अपने भाग्य को हमको दूसरों की क्या पड़ी, हमें हमारे जान माल की रक्षा करनीहै"

"यह पीटने योग्य है। बदमाश! इतना और बाकी है, संसार हमारे आनन्द का घर है। नालायक! दूर हो, दूर आ खड़ा हुआ। हट जा यहाँ से नहीं तो ठोकरों से सीधा कर दूंगा।"

'आखिर है तो नर! जरा अपने लिये भी सोचो। समय का फेर है क्यों मद माते हो? तुम्हें भी ये ही यंत्रणायें सहनीं होंगी। कुछ ध्यान दो। जरा सोचो तो सही कौन देश, कौन मानव और कौन समाज सदा एकसा रहा है। × ×

समाज मानवों का समूह है, समाज संगठित तभी रह सकता है, जब कि प्रेम या दया का पारस्परिक व्यवहार कायम रहता है, जब इसका नाश होगा और दुःखी को सहारा नहीं देंगे तभी हमारा और हमारे समाज का पतन निकट है। सहकार ही धर्म है—कर्तव्य है और व्यवहार है। यही शाँति का मूल मंत्र है। + + +

देखिये, जब आप किसी संकट में गुजरतेहैं उसी समय यदि किसी व्यक्ति द्वारा बचा लिये जायँ तो आप कितने प्रसन्न होंगे, उसका उपकार मानेंगे, बचाने वाले के दुर्व्यवहार से आप को कितना कष्ट होता है, यह अनुभव से ही मालूम होता है।

इतना सब होते हुए भी मनुष्य नहीं संभलता है, कारण उसने मानव हृदय को नहीं पहचाना है। यदि अपने पर आये हुए कष्ट को झेलते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा करलें कि "जैसा दुःख हमें बुरा लगता है, वैसा दूसरे को भी लगता है और जो सुख हमें अच्छा लगता है वह अन्य को भी भाता है, इसलिये मैं कभी भी अन्य को नहीं सताऊँगा, मेरी आत्म-वृत्ति जैसा व्यवहार सभी से करूँगा।

पंडित कौन है?

(महाभारत उद्योग पर्व, विदुर प्रजागर, अध्याय ३२ से)

आत्म ज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्म नित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

जिसने आत्म ज्ञान का अच्छी तरह आरम्भ किया है, जो निकम्मा आलसी कभी न रहे। सुख, दुख, हानि, लाभ, निन्दा, स्तुति, हर्ष शोक न करे, धर्म में ही निश्चिन्त रहे, लुभावनी विषय वासनाओं में आकर्षित न हो वही पण्डित कहलाता है।

निषेवते प्रशस्तानि, निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्धधान, एतत्पण्डित लक्षणम्॥

सदा धर्म युक्त कर्मों में प्रवृत रहे, अधर्म युक्त कर्मों का त्याग करे, ईश्वर, वेद और सदाचार पर निष्ठा रखे, एवं श्रद्धालु हो, यह पण्डितों के लक्षणहैं।

क्षिप्रं विजानाति चिरंशृणोति,
विज्ञायचार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो ह्युपयुंक्ते परार्थे,
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥

जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके, बहुत समय तक शास्त्रों का पठन, श्रवण और मनन करे, जितना ज्ञान हो उसे परोपकार में लगावे, स्वार्थ भावनाओं का परित्याग करे, अनावश्यक स्थान पर मौन रहे, वह प्रज्ञान पंडित होता है।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति, नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति, नराः पण्डित बुद्धयः॥

जो अयोग्य वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा न करे, नष्ट हुए पदार्थों के लिए शोक न करे, आपत्ति काल में मोहित होकर कर्तव्य न छोड़े वही बुद्धिमान पण्डित है।

प्रवृत्त वाक् चित्र कथ ऊहवान् प्रतिभान वान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥

जिसने विद्याओं का अध्ययन किया है, जो शंकाओं का समाधान करने में समर्थ है, शास्त्रों की व्याख्या कर सकता है, तर्क शील और कुशल वक्ता है वही पण्डित कहला सकता है।

पाठकों का पृष्ठ ।

(१)

नोट—स्वर योग से दिव्य ज्ञान पुस्तक के संबंध में अनेक पत्र हमारे पास आये हैं, जिनमें जिज्ञासु कुछ विशेष जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं। जिज्ञासुओं से प्रार्थना है कि वे इस संबंध में हमें न लिखकर सीधे लेखक से पत्र-व्यवहार करें। लेखक का पता यह है—श्री नारायण प्रसाद तिवारी 'उज्ज्वल', सब इन्स्पेक्टर पुलिस, पो० कान्हीवाडा जि० छिंदवाडा है। —सम्पादक

(२)

मैं स्वर योग का प्रेमी हूँ। हिन्दी और मराठी में स्वर योग पर जितनी भी पुस्तकें छपी हैं, वे सभी मैंने पढ़ी हैं, परन्तु 'स्वर योग से दिव्य ज्ञान' जैसी विवेचना पूर्ण पुस्तक मैंने एक भी न पढ़ी थी। इससे मुझे बहुत सी नवीन जानकारी प्राप्त हुई है।

—शंकरशरण अवस्थी, बिलग्राम

(३)

वर्तमान समय में बुद्धि दोष के कारण हम प्राचीन तत्व ज्ञान को नहीं समझ पाते और उसका उपहास करते हैं। फल स्वरूप अपने पूर्वजों के अमूल्य खोजों का लाभ उठाने से वञ्चित रह जाते हैं। 'स्वरयोग से दिव्यज्ञान' के लेखक ने इस महत्त्व को वैज्ञानिक ढङ्ग से लिखकर हमारी आँखें खोल दी हैं। भारतीय जनता इस पुस्तक के लिए लेखक की चिर ऋणी रहेगी।

—विद्यावागीश भट्ट, शोलापुर

(४)

भोग में योग पुस्तक मिली। शीघ्र पतन की मुझे भारी शिकायत थी। अनेक स्तम्भक औषधियों सेवन करके निराश हो चुका था, इसमें बताई हुई विधियों से मुझे बड़ा लाभ हो रहा है।

—गिरजादत्त गोस्वामी, डिबाई।

(५)

हमें आशा न थी कि अखण्ड-ज्योति मासिक पत्र इतने थोड़े समय में ही बुद्धि और विचार का भण्डार बनेगी इस पत्रिका की जितनी तारीफ करें, तो भी थोड़ी ही है कारण ? जब से आपका ग्राहक बनकर 'अखण्ड-ज्योति' अवलोकन किया, तब से हमारे आत्मा को धैर्य और शान्ति प्राप्त हुआ है।

शक्तिनन्द शर्मा, पटुको बाजार नेपाल,

(६)

आपकी महान् कृपा से तथा आपके 'अखण्ड-ज्योति' परिवार की हार्दिक प्रेरणा से मेरे जीवन में जो आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है, उसके लिये हार्दिक धन्यवाद है। आज उन तूफानी आवेशों का नाम नहीं, जो पिछले वर्ष में था। आपकी कृपा से मुझ में बड़ा परिवर्तन हो चुका है। यहाँ तक कि मेरे दोस्त मेरी अवस्था को देकर मुझे कहते हैं—रमेश तुझे क्या हो गया है। —रमेश, कुम्भीपुर

(७)

मुझे 'अखण्ड-ज्योति' का नमूना ता० ११ जून को मिला। पढ़ने से ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मैं किसी ऋषि के आश्रम में बठा उपदेश सुन रहा हूँ। सचमुच 'अखण्ड-ज्योति' की बीणा की अखण्ड झनकार मेरे हृदय में बज रही है। मेरे पास इस समय पैसे न होने के कारण मैं अखण्ड-ज्योति का ग्राहक नहीं हो सका। लेकिन मैं शीघ्र ही आपके पत्र का ग्राहक बनूंगा और अपने मित्रों को भी बनाऊँगा।

गोविन्दसिंह विष्ट, नपाल खोला, अलमोड़ा।

अपरोक्ष आवाहन।

परलोक विद्या के आचार्य श्री, बी. डी. ऋषि, बम्बई)

परलोकगत व्यक्ति से संवाद करने के प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के संबंधी के उपस्थिति में किये जाते हैं, संबंधी के प्रेमपूर्वक प्रार्थना से आवाहित व्यक्तिका आगमन साधारणतः सुलभता से होता है। स्नेहयुक्त व्यक्ति की उपस्थिति और माध्यम का सहकार्य इन दोनों तत्वों से दिवंगत मनुष्य अपने विचार प्रकट करने में समर्थ होते हैं, तथा जो उनको पूछा जाता है, उन बातों के सम्बन्ध में भी यथा शक्ति तथा यथा मति सन्देश देते हैं। कभी २ स्वयं प्रेरणा से भी वे अपने विचार भिन्न-भिन्न रीति से व्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त प्रयोगों के अतिरिक्त सम्बन्धियों के अनुपस्थिति में भी स्वर्गस्थ व्यक्ति से संवाद करने के प्रयत्न किये जाते हैं; इन प्रयोगों में माध्यमों के सिवाय अन्य कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं रहता है, इस अवसर पर केवल आवाहित व्यक्ति का नियमानुसार ध्यान करने पर उसका आगमन होकर सन्तोषकारक तथा विचारणीय सन्देश प्राप्त होते हैं, इस प्रकार के प्रयोग जिज्ञासुओं के लिये करने की सन्धि हमेशा हमको आती हैं, कारण कई कारणों से बहुत से लोग हमारे प्रयोग में उपस्थित होने में असमर्थ रहते हैं।

कई पाठकों को यह विदित होगा कि प्रायः प्रति दिन सुभद्रा बाई से हम संवाद करते हैं। वह समाप्त होने पर जिज्ञासुओं के लिये प्रयत्न किये जाते हैं, उस समय हमारे सामने जिज्ञासु के पत्र के अतिरिक्त अन्य कोई आकर्षक वस्तु नहीं रहती, जिस व्यक्ति का आवाहन करना होगा, उसका नाम नाम तथा सम्बन्ध उस पत्र में लिखा हुआ रहता है, उसके अनुसार हम उस व्यक्ति का नामोच्चार करके उसके आगमन के लिने प्रार्थना करते हैं। कुछ मिनिट तक प्रार्थना करने पर मेज में स्वयंगति प्राप्त होती है। जिससे उस व्यक्ति का आगमन सूचित होता है। इस प्रकार से आगमन विदित होने पर उस व्यक्ति को अपने सन्देश लिखकर बतलाने की विनती की जाती है, वह स्वीकार होने पर औजा बोर्ड द्वारा सन्देश लिखकर आते हैं। उस व्यक्ति के सम्बन्धी ने जो प्रश्न पूछे होंगे उनके बारे में प्रथम सन्देश प्राप्त किये जाये जाते हैं। वह समाप्त होने पर उस व्यक्ति को जो स्वयं कहना होगा। वह लिखा जाता है, इन सन्देशों में आवाहित मनुष्य का व्यक्तित्व कई प्रकार से स्पष्ट होकर उनके विचार प्राप्त होते हैं।

कभी-कभी प्रथम प्रयोग में कुछ देर तक प्रार्थना करने पर भी आवाहित व्यक्ति का आगमन नहीं होता, ऐसे समय पर सुभद्रा बाई से प्रयत्न स्थगित करने की सूचना मिलती है, दूसरे दिन फिर उसी प्रकार का प्रयत्न करके इच्छित मनुष्य की प्रतीक्षा की जाती है, प्रायः दूसरे दिन प्रयत्न सफल होता है, क्वचित ही तीसरे या चौथे दिन तक प्रयत्न करना आवश्यक होता है, बार-बार ध्यान करने पर इच्छित व्यक्ति का न आना कई कारणों पर निर्भर रहता है, कभी-कभी प्रार्थना की प्रति क्रिया यथोचित न होने से अथवा परलोकस्थ मार्गदर्शकों की अनुमति न मिलने से अथवा कुछ कार्य में व्यग्र होने से परलोक वासियों का आगमन इच्छित समय पर नहीं होता है।

सब व्यक्तियों को प्रथम प्रयोग में सन्देश लिखने की सुविधा नहीं रहती, इस लिये यह देखा गया है कि ऐसे समय पर सुभद्रा बाई उनको अदृश्य रीति से साहाय्य करती है। अथवा उनको पूछकर उनके विचार लिखकर बतलाती है, यदि मृतात्मा को जो भाषा आती होगी वह हमको अपरिचित हो, तो अन्य किसी परलोकस्थ व्यक्ति का साहाय्य लेना आवश्यक होता है। जो इहलोक में निरक्षर थे, वे प्रायः अपने विचार अन्य साक्षरों द्वारा व्यक्त करते हैं। उसी के अनुसार बालकों के स्थिति के बारे में अन्य परिचित व्यक्ति द्वारा संदेश प्राप्त हो सकते हैं।

(अपूर्ण)

लोभ का पिशाच

[रचयिता—श्री० रामदयाल गुप्ता, नौगढ़, बस्ती]

धन जीवन रक्षा की वस्तु है, किन्तु आज तो धन की रक्षा के लिए जीवन हो रहा है। आज मनुष्य अज्ञान के इतने गहरे गर्त्त में जा गिरा है कि उसे धन के तृषा के आगे कर्तव्य धर्म यहाँ तक कि मनुष्यत्व को भी भूल गया। आये दिन ऐसे समाचार सुनने को मिलते रहते हैं जो प्रकट करते हैं, कि धन कितना पैशाचिक रूप धारण कर रूप धारण कर सकता है और कितने कुकर्म कर सकता है।

इसी अप्रेल की लखनऊ की घटना है, जिसे समाचार पत्रों में आप लोगों ने पढ़ा होगा। उसे मैं यहाँ उद्धृत करता हूं—

"लड़की गरीब घराने की थी। माता विमाता थी। वह उससे अक्सर हमेशा ही जला भुना करती थी। उसके पिता ने उसकी शादी अपने से अच्छे घराने में कर दी। दहेज विशेष न दे सका। इधर लड़के के पिताने समझा कि दहेज काफी मिल जायगा, ठहराने की कोई आवश्यकता नहीं। विवाहोपरान्त जब वह सुसराल आई तो उसके सास, ससुर यहाँ तक कि उसके पति देव ने भी धन न मिलने के कारण को पकड़ कर चाहे जैसे बुरी भली सुनाईं। वह बेचारी गरीब लड़की खून का घूंट पीकर रह जाती। आखिर वह कर ही क्या सकती थी। जब नैहर गई तो सब बातें अपने पिता से कहीं। माता तो उस से खुद ही नाराज रहा करती थी, इससे उससे न कह कर पिता से सारा दास्तान सुसराल वालों का कह सुनाया। पिता बेचारा क्या करता उसको समझा बुझा कर भेज दिया। इस बार उसने और भी ज्यादा मुसीबतें सहीं और नैहर जाने पर पिता से कहा—"पिताजी मुझे मेरे सास तथा ससुरे ने बहुत पीटा है, तथा कहा है कि अपनी मृत माता के आभूषण लेती आना। पीटने का निशान मेरी पीठ पर अभी तक बना हुआ है।" यह कह कर वह रोने लगी। बाप बेचारा बड़ा दुखी हुआ, परन्तु करता ही क्या। इधर उसकी विमाता थी तो उधर उसके सास ससुरे कष्ट देते थे। लाचार होकर फिर उसको समझा बुझा कर भेज दिया।

एक दिन पड़ोस के रहने वालों ने रात को सुना "मुझे जलाओ मत चाहे मार डालो"। इतना सुन कर उन लोगों को फिर कोई आवाज मालूम न दी। सबेरे लड़की के ससुराल वालों ने यह अफवाह उड़ाई कि लड़की फांसी लगा कर तथा जल कर मर गई है। क्यों कि जलने का दाग उसके शरीर पर बना हुआ था, और फिर जब लड़की ने जलाने को मना किया तो गले में रस्सी बाँध कर गला घोट कर मार डाला था। सबेरे पड़ोसियों द्वारा सरकारी कर्मचारियों को सब रात का दास्तान मालूम हुआ और पोस्टमार्टम करने पर मालूम हुआ कि यह प्रथम जलाई जाकर फिर गला घोट कर मार डाली गई है, आखिर नतीजा यह हुआ कि उसके सास, ससुर तथा पति को हिरासत में ले लिया गया।"

विवाह संस्कार दो आत्माओं का पवित्र सम्मेलन है। एक आध्यात्मिक समारोह है। इस यज्ञ कर्म में भी जब पैसे ही को प्रधानता मिलने लगी, पैसे के लिये लड़के लड़कियाँ बिकने लगे। दहेज के लिए प्राण पीसे जाने लगे, तो समझना चाहिये कि मनुष्य जाति के मूल भूत सिद्धान्तों का ही पतन हो रहा है।

हे प्रभु मनुष्यता को शैतानियता के पंजे से बचाओ।